श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

वर्ष : ६ अंक : ७

जुलाई १९८७

विवेक शिखा

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टाटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक बसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगांव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी—दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा—कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी—नागपुर (महाराष्ट्र)
२१. श्रीराम विलास चौधरी—सुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद—देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव मालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगांव (महारा
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगांव (महारा
३२. श्री दया शंकर तिवारी—लाल बाजार, सीवान (बिह
३३. श्री राजकुमार गड़ोदिया—अपर बाजार (रांची
३४. कुमारी चुक चुक—बेलगांव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहा
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाह

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ जुलाई—१९८७ अंक—७

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

सिद्ध (भुना हुआ) धान बोने से अंकुर नहीं निकलता, असिद्ध (बिना भुने) धान से ही अंकुर आते हैं। इसी प्रकार 'सिद्ध' होकर मरने से मनुष्य को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता, परन्तु यदि वह 'असिद्ध' अवस्था में मरे तो उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

(२)

लक्ष्य वेधना सीखना हो तो पहले बड़ी वस्तुओं पर निशाना लगाना सीखा जाता है, इससे बाद में छोटी वस्तुओं पर भी आसानी से निशाना लगाया जा सकता है। इसी प्रकार, पहले यदि साकार मूर्तियों पर मन को स्थिर किया जाए तो फिर बाद में निराकार पर भी मन सरलता से स्थिर किया जा सकता है।

(३)

संसार में आँधी में उड़ने वाली जूठी पत्तल की तरह रहा करो। जूठी पत्तल आँधी के भरोसे निर्भर रहती है, आँधी उसे जहाँ उड़ा ले जाती है, वहीं जाती है— कभी किसी के घरके भीतर तो कभी कूड़े-कचरे में। इसी तरह, प्रभु ने तुम्हें संसार में रख छोड़ा है, तो अभी संसार में रहो; फिर जब वे तुम्हें इससे अच्छी जगह पर ले जाएँगे तब उनके भरोसे वहीं रहना। उन पर निर्भर होकर निर्लिप्त रूप से पड़े रहना।

(४)

भक्तगण भगवान् के लिए सब कुछ छोड़ क्यों देते हैं? पतंग यदि एक बार प्रकाश को देख ले तो फिर अँधेरे में नहीं जाता; चींटी गुड़ में लिपट कर भले ही प्राण दे दे, पर उसे छोड़ती नहीं। इसी प्रकार भक्त भी ईश्वर के लिए प्राणों की बाजी लगा देता है, परन्तु दूसरी कोई चीज नहीं चाहता।

भजन

—श्री सारदा तनय

(१)

(धुन—दादरा)

प्रभु रामकृष्ण, मैं सतृष्ण, दरस बिन तुम्हारे।
मुझ दीन दास की पियास बुझा दो न प्यारे॥

तुम्हीं तात, तुम्हीं मात, प्रिय सुहृद सखा भ्रात।
हे प्राणनाथ, मुझ अनाथ के तुम्हीं सहारे॥

मैं सीस लिए भार, कब से रहा पुकार।
अब हो उदार, खोल द्वार, मिटा क्लेश सारे॥

मुझ पर कृपा करो, अवगुण न उर धरो।
दुःख-दैन्य हरो, नित विहरो, चित्त में हमारे॥

(२)

(पिलू बरवा कहरवा)*

कठिन जगत-मरुभूमि भेदकर करुणाधारा बहती जाय।
आओ प्यासे थके पथिकजन, निर्मल जल पी तृषा बुझायँ॥

विषयवासना-दाह भयंकर, नाहक सहता क्यों जीवन भर ?
मृगतृष्णा के पीछे पागल, दौड़-दौड़ क्यों जनम गँवाय।
एक बार इस प्रेमनदी में मज्जन कर, शीतल हो काय॥

गंगातट बसकर भी प्यासा, इत उत खोजत जल अंधा-सा,
रामकृष्ण गंगा की धारा, ब्रह्मानन्द-जलधि प्रति धाय।
मिटे व्यर्थ आयास क्लेश सब, चलो शीघ्र अब डूब लगायँ॥

❀

*स्वामी प्रेमेशानन्द रचित 'वंगहृदय गोमुखी होइते' का भावानुवाद

सम्पादकीय सम्बोधन

सुनो, अब भी सुनो

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

उस दिन शाम को आश्रम के छात्रावास-लॉन में हम कुछ लोग बैठे हुए थे। प्राय: सभी लोग युवक एवं प्रबुद्ध थे। एक युवक ने हमलोगों की बातचीत का क्रम भंग करते हुए, कुछ गंभीर होकर—एक स्वामीजी से पूछा—"महाराज, यह देश साधु-संतों का देश रहा है। आज भी इस देश में महान साधुओं की कमी नहीं है। कई तो भगवान भी हैं। फिर भी इस देश की यह बदतर और दयनीय हालत क्यों है ? क्या इन संतों की प्रार्थनाओं, उपदेशों और चारित्र्य में यह बल नहीं कि देश को वर्तमान अधोगति से उबारा जा सके ?"

युवक के प्रश्न में एक ईमानादार जिज्ञासा थी—एक आंतरिक उद्विग्नता थी। वह कहीं भीतर से विचलित था, बेचैन था।

बिहार के औरंगाबाद जिले के बघौरा व दलेलचक गाँवों में हुए भीषण नरसंहार में ५४ राजपूत किसानों की नृशंस हत्या से युवक मर्माहत था। महिलाओं और नन्हें बच्चों के भी हाथ-पांव बाँधकर उनके गले रेत दिये गये थे। घरों को फूँक दिया गया था। और जलते घरों में जिन्दा या मुर्दा औरतों-बच्चों को फेंक दिया गया था। इसके कुछ ही दिन पूर्व औरंगाबाद जिले के ही छेछानी गांव में अप्रैल में हुए नरसंहार की कहानी आज भी ताजा है। इसमें ९ यादवों को मार डाला गया था तथा घरों को फूँक दिया गया था। मारे गये लोगों में तीन औरतें भी थीं। 'नंगे दैत्य जैसे खड़े जले मकानों की दीवारें, मलवे से भरे घर और अधजले अनाज आज भी वैसे ही अछूते हैं, जैसे घटना कल ही हुई हो।' (हिन्दुस्तान, पटना, १ जुलाई, पृष्ठ १) मेरठ में हिन्दू-मुस्लिम दंगे में प्राय: पाँच दर्जन लोग मारे गये हैं। पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग में गोरखा लैंड के समर्थकों ने कई सरकारी भवनों और पथों और पुलों को बम से उड़ा दिये हैं। पंजाब की व्यथा'कथा तो जग जाहिर ही है। दिल्ली में आतंकवादियों ने एक बच्चे के जन्मदिन पर एकत्र निर्दोष १४ नर-नारियों को गोलियों से भून दिया। पंजाब और हरियाणा में इसी ६ जुलाई को उन्होंने ७६ हिन्दू बस यात्रियों की नृशंस हत्या कर दी, जिनमें औरतें और बच्चे भी शामिल थे।

युवक की आँखों में ये सारी घटनाएँ समुद्री ज्वार की तरह उठ-गिर रही थीं। उसके प्रश्न में एक पूरे देश का दर्द चीख रहा था।

आज सारा देश जल रहा है। एक धर्म की ही एक जाति के कुछ लोग दूसरी जाति के लोगों की नृशंस हत्याएँ कर रहे हैं। एक ही धर्म की दो शाखाओं में से एक शाखा के कुछ गुमराह लोग निर्दोष हिन्दुओं की अंधाधुंध हत्या किये जा रहे हैं। एक ही देश के दो धर्मावलम्बी आपस में कट मर रहे हैं।

और यह सब उस देश में हो रहा है जहाँ कभी श्रीरामचन्द्र ने क्षत्रिय राजकुमार होकर भी गुहक चाण्डाल को गले लगाया था और भीलनी शबरी के जूठे बेर खाये थे; जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर भी राष्ट्र की भावात्मक एकता के लिए जात-पात को भूल कर ग्वाल बालकों के साथ गौएँ चरायी थीं तथा जातीय मिथ्या गौरव के भेद को मिटाकर गोपियों के साथ राष्ट्रीय एकात्मता का प्रेममय महारास रचाया था; जहाँ भगवान बुद्ध एक मेमने की प्राण-रक्षा के लिए अपनी बलि देने को प्रस्तुत हो गये थे और मानवात्मा की प्रतिष्ठा के लिए एक वेश्या के घर भोजन करना स्वीकार किया था तथा एक चांडाल के घर निमंत्रित होकर मांस तक खा लिया और अभिशाप का एक शब्द कहे बिना दर्द से तड़प-तड़प कर अपने प्राण विसर्जित कर दिये; जहाँ नानकदेव ने विधर्मियों को भी गले लगाया तथा गुरु गोविन्द सिंह ने हिन्दुओं की रक्षा के लिए अपने पुत्रों की बलि चढ़ाये जाने पर भी एक कतरा आँसू नहीं बहाया; जहाँ श्रीरामकृष्ण ने रसिक मेहतर के पाखाने को अपने लम्बे बालों से साफ किया; और महात्मा गाँधी ने भंगियों की बस्तियों की स्वयं झाड़ू लगाकर सफाई की।

क्या हो गया है हमलोगों को आखिर ! हमारी आँखें इतनी अन्धी हो गयी हैं कि हम अपने देश की इस ऊँची परम्परा को देख ही नहीं पाते। हमारे कान इतने बहरे हो गये हैं कि हम अपने पूर्व के महापुरुषों की वाणियों को सुन ही नहीं पाते। लेकिन यदि हमें और हमारे देश को जीवित रहना है तो हमें सुनना ही पड़ेगा अपने प्रज्ञा-पुरुषों से सदुपदेशों को। कोई दूसरा मार्ग इसके सिवा है ही नहीं—

नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय।

सारा देश जातीय विद्वेष और घृणा की नारकीय आग में धू-धू कर जल रहा है। और हम धर्म को दोषी ठहरा रहे हैं इसके लिए। दोष धर्म का नहीं, हमारा है। हमारा हृदय संकुचित हो गया है। हम स्वार्थी हो गये हैं। स्वामी विवेकानन्द ने एक बार अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द से आबू रोड स्टेशन पर कहा था —"हरिभाई, मैं अब भी तुम्हारे उस तथाकथित धर्म के बारे में कुछ नहीं समझ पाया। पर मेरा हृदय काफी विशाल हो गया है। मैं दूसरों की पीड़ा का अनुभव करना सीख गया हूँ। विश्वास करो, मैं उसे सचमुच अत्यन्त तीव्रता से अनुभव कर रहा हूँ।"

हमें भी दूसरों की पीड़ा का तीव्रता से अनुभव करना सीखना ही पड़ेगा - उदार, सहिष्णु और प्रेममय होना पड़ेगा। इसके सिवा कोई दूसरा विकल्प है ही नहीं।

यह जो जातीय दंगे हो रहे हैं इसका कारण है कि हमने समाज में अपनी वर्चस्वता के लिए हजारों वर्षों से अपने ही समाज के कुछ अंगों को निर्दयतापूर्वक कुचला है। आज जब उनमें थोड़ी चेतना आयी है तो उनमें भी प्रतिशोध की दावाग्नि भड़क उठी है। यह हमारे विनाश की पूर्व पीठिका है। इसी ओर संकेत करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"तुम लोग हमेशा से जो कुछ करते आ रहे हो, वह तुम्हारा पृथकता का प्रयत्न रहा है। आपस की मारकाट ही करते हुए मर मिटोगे ! ये निम्न श्रेणी के लोग जब जाग उठेंगे और अपने ऊपर होने वाले तुम लोगों के अत्याचारों को समझ लेंगे, तब उनकी फूंक से ही तुम लोग उड़ जाओगे। उन्होंने तुम्हें सभ्य बनाया है, उस समय वे ही सब कुछ मिटा देंगे। सोचकर देखो न—रोमन सभ्यता गॉल जाति के पंजे में पड़कर कहाँ चली गयी। इसीलिए कहता हूँ, इन सब निम्नजाति के लोगों को विद्या दान, ज्ञान दान देकर इन्हें नींद से जगाने के लिए सचेष्ट हो

जाओ! जब वे लोग जागेंगे— तब वे भी तुम लोगों के किये उपकारों को नहीं भूलेंगे और तुम लोगों के प्रति कृतज्ञ रहेंगे।" (विवेकानन्दजी के संग में : पृ० १७१)

लेकिन हम स्वामीजी की वाणी को अब तक अनसुनी करते रहे हैं। फलतः हम नरसंहार के महाजाल में फँसते चले जा रहे हैं, हमने स्वामीजी की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। हम अपने मन में अपनी काल्पनिक श्रेष्ठता का नाग पालते रहे हैं और दीनों का शोषण करते रहे हैं। स्वामीजी ने बड़ी पीड़ा से भरे हृदय से इस ओर संकेत किया था—"जीवन संग्राम में सदा लगे रहने के कारण निम्न श्रेणी के लोगों में अभी तक ज्ञान का विकास नहीं हुआ। ये लोग अभी तक मानव बुद्धि द्वारा परिचालित यन्त्र की तरह एक ही भाव से काम करते आये हैं, और बुद्धिमान चतुर व्यक्ति इनके परिश्रम तथा कार्य का सार तथा निचोड़ लेते रहे हैं।··· परन्तु अब वे दिन नहीं रहे। निम्न श्रेणी के लोग धीरे-धीरे यह बात समझ रहे हैं और इसके विरुद्ध सब सम्मिलित रूप से खड़े होकर अपने समुचित अधिकार प्राप्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये हैं।··· अब हजार प्रयत्न करके भी उच्च जाति के लोग निम्न श्रेणियों को अधिक दबाकर नहीं रख सकेंगे। अब निम्न श्रेणियों के न्याय संगत अधिकार की प्राप्ति में सहायता करने में ही उच्च श्रेणियों का भला है।

"इसीलिए कहता हूँ कि तुम लोग ऐसे काम में लग जाओ, जिससे साधारण श्रेणी के लोगों में विद्या का विकास हो। इन्हें जाकर समझाकर कहो– 'तुम हमारे भाई हो– हमारे शरीर के अंग हो— हम तुमसे प्रेम करते हैं—घृणा नहीं।' तुम लोगों की सहानुभूति पानेपर ये लोग सौ गुने उत्साह के साथ काम करने लगेंगे।" (वही, पृ० १६९-७०)

यह आपस की मारकाट क्यों होती है? क्योंकि हमारा मन प्रेममय नहीं होकर घृणा-विद्वेषमय हो गया है। और यदि हम में से किसी एक का भी मन अशान्त और तनावों से भरा है तो वह स्वयं तो अभय में नहीं ही रहेगा, दूसरों को भी अभय में, चैन और शांति में नहीं रहने देगा। इसी से स्वामीजी प्रायः विक्टर ह्यूगो के भावों को दुहराते हुए कहा करते थे कि 'हम अभी मनुष्य नहीं हुए हैं केवल मनुष्यता के उम्मीदवार हैं—प्रत्याशी हैं।" यूनेस्को की प्रस्तावना में एक बड़ी मनोवैज्ञानिक और ध्यान देने योग्य बात कही गयी है। वह यह कि "चूँकि युद्ध की शुरुआत लोगों के मन में ही होती है, इसलिए लोगों के मन में ही शांति के साधनों का निर्माण होना चाहिए।" इसलिए आज यह अहम प्रश्न है कि हमें अपने भीतर के ही राक्षस को, दैत्य को समाप्त कर उसकी जगह देवता को प्रतिष्ठित करना होगा। अपने भीतर प्रेम के पुष्प को विकसित करना होगा जिसकी सुगंध में हम सभी एक हो जायँ।

दूसरी बात, हमें वेदान्त के अद्वैत विचार को जीवन में उतारना ही होगा। हम सबको अपने सर्वव्यापी उस आध्यात्मिक स्वरूप की पहचान करनी होगी जिसमें हमारे भेद की सारी दीवारें स्वतः झड़ जाती हैं और हम एकात्मता की डोर में बँध जाते हैं। सब को अपने परमात्म रूप को पहचानने के लिए उत्प्रेरित करना होगा। सुनिए, स्वामीजी क्या कहते हैं—

"हमारे अभिजात पूर्वज साधारण जन समुदाय को जमाने से पैरों तले कुचलते रहे। इससे फलस्वरूप वे बेचारे एकदम असहाय हो गये। यहाँ तक कि वे अपने आपको मनुष्य मानना भी भूल गये।····

"भारत के इन दीन-हीन लोगों को, इन पददलित जाति के लोगों को, उनका अपना वास्तविक रूप समझा देना परमावश्यक है। जात-पाँत का भेद छोड़कर, कमजोर और मजबूत का विचार छोड़कर, हर

एक स्त्री-पुरुष को, प्रत्येक बालक-बालिका को, यह सन्देश सुनाओ और सिखाओ कि ऊँच-नीच, अमीर-गरीब और बड़े-छोटे, सभी में उसी एक अनन्त आत्मा का निवास है, जो सर्वव्यापी है; इसीलिए सभी लोग महान् तथा सभी लोग साधु हो सकते हैं। आओ हम प्रत्येक व्यक्ति में घोषित करें— **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत**– 'उठो, जागो और जब तक तुम अपने अन्तिम ध्येय तक नहीं पहुँच जाते, तब तक चैन न लो।'.........

"तुम अपने को और प्रत्येक व्यक्ति को अपने सच्चे स्वरूप की शिक्षा दो और घोरतम मोहनिद्रा में पड़ी हुई जीवात्मा को इस नींद से जगा दो। जब तुम्हारी जीवात्मा प्रबुद्ध होकर सक्रिय हो उठेगी, तब तुम आप ही शक्ति का अनुभव करोगे, महिमा और महत्ता पाओगे, साधुता आयगी, पवित्रता भी आप ही चली आयगी—मतलब यह कि जो कुछ अच्छे गुण हैं, वे सभी तुम्हारे पास आ पहुँचेगे।" (वि० सा० खं० ५ पृ० ८८-८९)

आज हमारा चिंतन ही संकीर्ण हो गया है, दर्शन ही खंडित हो गया है, दृष्टि ही एकांगी हो गयी है। 'स्व' के आगे हम देखते ही नहीं। लेकिन हमें इस सीमा को तोड़ना ही होगा और अपने को जाति, राज्य या धर्म-विशेष की दीवार से मुक्त कर एक व्यापक धरातल पर जीना होगा। तभी हमारा और हमारे राष्ट्र का मंगल है। स्वामी विवेकानन्द हमें ललकारते हुए कहते हैं—"ऐ वीर, साहस का अवलम्बन करो। गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। तुम चिल्लाकर कहो कि मूर्ख भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सभी मेरे भाई हैं। भारत के दीन दुखियों के साथ एक होकर गर्व से पुकार कर रहो—'प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानीकी फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है' भाई, कहो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है, और रात-दिन तुम्हारी यही रट लगी रहे—'हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो। माँ, मेरी दुर्बलता और कापुररुषता दूर कर दो। माँ, मुझे मनुष्य बना दो।"

स्वामीजी की यह वाणी हमने अब तक सुनकर भी नहीं सुनी। फल वही हुआ है जिसे देखकर हमारा हृदय आज हाहाकार कर रहा है। हमारी आँखों से खून के आँसू बह रहे हैं। हमारे प्राणों से एक आह, एक चीत्कार एक निराशा भरा उच्छ्वास निकलने लगा है। हम सुनें, अब भी तो स्वामीजी की वाणी सुनें और तदनुसार अपने जीवन, जीवन-पथ और समाज को ढालने की कोशिश करें। बचने का और मार्ग ही क्या है? जीवित रहने का अन्य उपाय ही क्या है? मैं अपने प्राणों की अतलता से, पूरी गहराई से और पूरी निष्ठा से आपसे निवेदन करता हूँ- मेरे मित्रो, मेरे प्रिय भाइयो और बहनो, वक्त आ गया है, सही समय आ गया है सुनो, अब भी सुनो विवेक की वाणी– स्वामी विवेकानन्द की जीवनदायी वाणी, प्रेरक संदेश और अमृत-मंत्र को और बचा लो डूबने से भारत की डगमगाती नौका को।

स्वामीजी से मेरी प्रार्थना है कि वे हमलोगों में चेतना का ऐसा संचार कर दें कि हम उनकी तेजोदीप्त वाणी से दीपित होकर अपने जीवन और जगत को ज्योतिर्मय, अमृतमय और शांति-सुखमय बना सकें। जय स्वामीजी!

●

जन्म तिथि : २३ जुलाई

स्वामी रामकृष्णानन्द

—डॉ० ओंकार सक्सेना
जयपुर (राजस्थान)

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, "श्रीरामकृष्ण देव एक अद्भुत माली थे, क्योंकि उन्होंने अपनी पद्धति के लिए भिन्न-भिन्न पुष्पों से गुलदस्ता बनाया था। इसमें अनेक प्रतिरूपों एवं विचारों का समावेश हुआ है। और होता रहेगा।" स्वामी रामकृष्णानन्द इसी गुच्छे के एक महकते हुए पुष्प हैं; जिन्हें महान अनुरक्त तथा मानवतावादी पार्षद् कहा जा सकता है। शशि भूषण (स्वामी रामकृष्णानन्द) शरतचन्द्र (स्वामी सारदानन्द) के चचेरे भाई थे। केशवसेन के 'इण्डियन मिरर' में प्रकाशित एक अलौकिक चरित्र-चित्रणसे प्रेरित होकर ये दोनों भाई कुछ मित्रों सहित अक्टूबर १८८३ में श्रीरामकृष्णदेव को परखने के इरादे से दक्षिणेश्वर गये थे, तदनन्तर वे उनकी दिव्याकर्षण परिधि के बाहर आ ही न सके।

श्रीरामकृष्णदेव ने अपनी त्रिकाल दृष्टि का रहस्योदघाटन करते हुए कहा, शशि तथा शरत को देखा था, ऋषिकृष्ण के (यीशु ख्रीष्ट के) दल में।" एक दिन अन्यमनस्क भाव से श्रीरामकृष्णदेव बुदबुदाए, "तुम जिसे चाहते हो वह यही है, यही है।" यह सुनकर शशि के भीतर एक अद्भुत विचार उठा और उन्होंने समझ लिया कि ठाकुर श्रीरामकृष्णदेव ही जीवन की एकमात्र ज्ञेय वस्तु हैं। सभी अनुसंधान इस वृहत अनुसंधान का रूपान्तर मात्र हैं।

इन दिनों शशि की आध्यात्मिक प्रगति किस स्तर पर थी, इसका अनुमान श्रीरामकृष्ण देव के प्रश्न "तुम्हें साकार से प्रेम है या निराकार से?" के प्रत्युत्तर में ईश्वर है या नहीं, यह तो जनता नहीं हूँ, तो फिर साकार और निराकार क्या?" से लगाया जा सकता है। इनकी सत्यनिष्ठा श्रीरामकृष्ण देव को प्रभावित किए बिना न रह सकी। शशि प्राय: आते थे, कुछ कहते भी न थे, केवल बैठ जाते थे। शशि भूषण उनके प्रति अत्यन्त अनुरक्त थे। उनको बर्फ पसन्द थी इसलिए एक बार गर्मी की कड़कड़ाती दोपहरी में कलकत्ता से बर्फ लेकर पैदल ही दक्षिणेश्वर चले आये, तब श्रीरामकृष्ण देव ने परिहास में कहा, "अहा! तुमको बहुत कष्ट हुआ, देखो, जिसके हाथ से पानी चुए नहीं, लोग उसे कंजूस कहते हैं, किन्तु देखता हूँ कि तुम कजूस नहीं दाता हो।" उसी प्रकार जाड़े के दिनों में बे मौसम का जमरुल न जाने कितना भटक कर ला उपस्थित किया, तब ठाकुर ने बिस्मय से पूछा, "ऐसे समय में जमरूल कहाँ मिला रे?" और कहाँ मिलेगा? सत्य संकल्प ठाकुर की जहाँ अभिलाषा और वीरभक्त जहाँ सेवक, कहाँ कौन सी वस्तु अलभ्य है? अन्तिम दिन शशि सात मील दौड़ते हुए डाक्टर के घर गये और फिर जब डाक्टर घर पर नहीं मिले तो एक मील और दौड़ते हुए उनके पीछे और आखिर उन्हें काशीपुर खींचकर ले ही आये। बाल भक्तों द्वारा श्रीरामकृष्ण देव की अन्तिम सेवा (जिसमें शशि का विशिष्ट स्थान था) के प्रति रोमाँ रोलाँ के विचार इन शब्दों में प्रकट हुए हैं, "गुरु के जीवन के अन्तिम दिनों में मार्था की सेवा का विनीत आदर्श ग्रहण किया गया था। रुग्ण गुरुदेव की सेवा से अथवा जिनकी आत्मा भगवान में लिप्त है और भगवान के निकट प्रार्थना करते हैं, उनकी शरीर की सेवा द्वारा उन्होंने इसका क्रियात्मक रूप में अभ्यास किया। यह गुरु की सेवा ही उनका भगवत् प्राप्ति का अपना मार्ग था और यदि वृद्ध टालसटाय जीवित होते, तो वह भी श्रेष्ठतर मार्ग बताते।"

माघ १८८७ में जब श्रीरामकृष्ण देव की पादुकाओं के समक्ष शशि ने संन्यास लिया तो वे स्वामी रामकृष्णानन्द कहलाये। स्वामी गम्भीरानन्द

रहस्योद्घाटन करते हैं, "नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) की इच्छा थी कि वे स्वयं इस नाम को ग्रहण करें, किन्तु शशि की सेवा तथा भक्ति को स्मरण कर शशि को ही वह नाम दिया गया।"

महासमाधि के पश्चात् ठाकुर की मृत देह को विधिवत अग्नि को समर्पित कर दिया गया। स्वामी गम्भीरानन्द लिखते हैं, "शशि तब भी किंकर्तव्यविमूढ़ थे। चिता निर्वापन होने पर उन्होंने चुपचाप भस्मास्थियाँ चुनकर ताँबे की कलसी में रख लिये तथा उसे सिर पर लाकर उद्यानवाड़ी में ठाकुर की शय्या पर रख दिया। शशि को विश्वास था कि ठाकुर गये नहीं हैं, इसीलिए ठाकुर की वस्तु आदि यत्न के साथ रखी गयीं एवं भस्मास्थि पूर्ण कलसी की नियमित पूजा चलने लगी।" तदन्तर भस्मावशेष तथा अस्थिनिचय दो भागों में विभक्त होकर कांकुड़ागाछी तथा वेलुड़ मठ में समाहित हुए। स्वामी रामकृष्णनन्द की ठाकुर पूजा अनूठी हुआ करती थी। वे उन्हें जीवित समझकर उनकी सेवा करते थे। अस्थिकलश के वेलुड़ मठ स्थानान्तरण के पूर्व चौदह वर्षों में एक दिन भी स्वामी रामकृष्णानन्द ने वाराह नगर मठ को नहीं छोड़ा। स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं, "शशि किस प्रकार स्थान को जगाये हुए बैठा रहता है। उसकी दृढ़ निष्ठा महान् आधार स्वरूप है।" उत्तरार्द्ध में जब उन्हें दक्षिण भारत में प्रचार-प्रसार एवं मठ स्थापना के लिए भेजा गया तब वे ठाकुर की छवि स्थापित कर एक निष्ठा से पूजा आदि करने लगे। एक रात वर्षा में स्वामी रामकृष्णानन्द ने देखा कि छत के चूने से ठाकुर पर बूँदें गिरने को हैं—इस समय स्थानान्तरित करने से ठाकुर की नींद टूट जायगी, इस भय से सारी रात वे छाता लगाकर बैठे रहे तथा सबेरे वर्षा वन्द हो जाने पर ही ठाकुर को अन्यत्र ले गये। 'मृण्मय में चिन्मय का दर्शन' रामकृष्णानन्द का वैशिष्ट्य यही है। मद्रास के भक्तों पर अनुग्रह करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा, "मैं तुम लोगों के समीप अपने एक ऐसे गुरुभाई को भेजूँगा, जो कि तुम सभी से अधिक कट्टर तथा पूजा, शास्त्र, ज्ञान एवं ध्यान धारणादि में भी अतुलनीय है।" उनके मन में तब रामकृष्णानन्द थे। १८९७ में रामकृष्णानन्द मद्रास पहुँचे। 'आईस हाउस' को केन्द्र बनाकर प्रवचनों के जरिए रामकृष्ण भावधारा एवं वेदान्त प्रचार में अग्रसर हुए। उन्हें शारीरिक, मानसिक तथा अर्थाभावजनित क्लेशों को सहन करना पड़ता था, यदि कोई पूछता, "स्वामीजी! आप इतना कष्ट कैसे सहन करते हैं?" तो वे उत्तर देते थे, "यह शरीर तो मात्र एक यंत्र है तथा उसमें भी अकिंचन, फिर यंत्री के लिए ही तो यंत्र है, यंत्री के निकाल लेने पर तो इसका रहना एवं न रहना दोनों समान हैं। जरा सोचो कि एक कलम यदि कहे कि मैं सौ-सौ पत्र लिखती हूँ तो क्या सचमुच वही लिखती है? नहीं, लिखता तो वह आदमी है जो उसे पकड़े हुए हैं।" प्रायः उनके समक्ष २०-२५ श्रोता हुआ करते थे, किन्तु उनकी भावना केवल यह थी कि वे मात्र ठाकुर का काय कर रहे हैं। उनका कहना था, "मैं इसकी परवाह नहीं करता कि मेरे विद्यार्थी मुझे सुन रहे हैं या नहीं। मैं स्वयं एक विद्यार्थी हूँ और अपनी कही गई बातें सुना करता हूँ।"

स्वामी गम्भीरानन्द के अनुसार वंगलौर में संस्कृत कॉलेज के सभागत पंडितों की सभा में सुललित संस्कृत में निर्भीक चित्त से श्रीरामकृष्ण के धर्म समन्वय के सम्बन्ध में उनका भाषण उल्लेखनीय है, क्योंकि अनुदार-पंथी पण्डित-समाज में उस समय इस प्रकार का भाषण देना स्वामी रामकृष्णानन्द के लिए ही सम्भव था। उनकी मान्यता थी कि, "द्वैतवाद का आदर्श है आनन्द और अद्वैतवाद का मुक्ति। पहले में प्रेमी को प्रेमास्पद की प्राप्ति होती है और दूसरे में दास स्वामी बन जाता है। दोनों ही उत्कृष्ट हैं। किसी को एक आदर्श छोड़ दूसरे की ओर जाने की आवश्यकता नहीं है।"

स्वामी रामकृष्णानन्द राजनीति एवं धर्म में ध्रुवीय दूरी मानने थे, उन्होंने दार्शनिक एरिक ड्यू से कहा था, "राजनीति में विषयानुभूति की स्वतन्त्रता है, जबकि धर्म विषयानुभूति से स्वतन्त्र है।"

(श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द प्रसंग से साभार)

कर्म और चरित्र

—स्वामी सत्यरूपानन्द
वेलुड़मठ

कर्म-योग पर व्याख्यान देते हुए स्वामी विवेकानन्द के विचार हैं—

विश्व में हम जितने भी कार्य देखते हैं, मानव-समाज की सारी गतिविधियाँ, हमारे चतुर्दिक के सारे कार्य-कलाप—सब मात्र हमारे विचारों के प्रस्फुटन हैं, मानव की इच्छाओं की अभिव्यक्ति हैं। यंत्र या औजार, शहर, जहाज या युद्ध-वीर—ये सब मानवी इच्छाओं के ही प्रस्फुटन हैं। और ये इच्छाएँ चरित्र का मूल होती हैं तथा चरित्र का निर्माण कर्म द्वारा होता है। जैसा कर्म होगा, इच्छाओं का प्रस्फुटन भी वैसा ही होगा। (कम्प्लीट वर्क्स-कलकत्ता अद्वैत आश्रम वॉल्यूम १, पेज-३०)

मानव अपने ही कर्मों से बना होता है। उसके सारे कार्य, उसकी रुचियाँ, विचार एवं अनुभव उसके भूतकाल के कर्मों द्वारा निश्चित किये जाते हैं। यदि हमारा वर्त्तमान हमारे अतीत के कार्यों का परिणाम है, तो यह निष्कर्ष तर्कपूर्ण है कि हमारा भविष्य हमारे वर्त्तमान कर्मों पर निर्भर करेगा। और जैसा कि हम जानते हैं, चरित्र ही मानव को पशुओं से ऊपर उठाता तथा चरित्र ही मानव में निहित शक्तिशाली दिव्यता को प्रस्फुटित करता और उसे सच्चा ईश्वर बनाता है।

कर्म किस प्रकार— चरित्र को आकार देता है, इसे दिखाने की कोशिश के पूर्व हम 'कर्म' एवं 'चरित्र' शब्दों के अर्थों पर विचार करें।

कर्म —

"कर्म" शब्द के दो अर्थ हैं—कार्य एवं इसका प्रभाव। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—"कर्म शब्द संस्कृत के 'कृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'करना'। सारे कार्य 'कर्म' हैं। शास्त्रीय रूप से 'कार्य-प्रभाव' भी इसका अर्थ है। रहस्यवाद के क्षेत्र में यह कभी-कभी वैसे प्रभाव के लिए प्रयुक्त होता है जिसके कारण-स्वरूप थे हमारे भूतकाल के कार्य।" (कम्प्लीट वर्क्स-वाल्यूम— १, पेज २७)

यहाँ पर हम कार्य (वर्क) को 'कर्म' अर्थ में स्वीकार कर चलेंगे। जीवन में कार्य के महत्त्व की व्याख्या आवश्यक नहीं है। मानव-सभ्यता का सम्पूर्ण विकास 'कार्य' द्वारा ही सम्पन्न हुआ है। कर्म ने हमारे ग्रहों का पुराना चेहरा बदल डाला और इसको एक जीवित और सुन्दर प्रदेश बना दिया है। कार्य ही के द्वारा मनुष्य अपने 'स्व' की अछोर गहराई में उतरा तथा उस ज्ञान को प्राप्त किया है जिसने उसे अमर बना डाला है।

चरित्र—

'चरित्र' एक ऐसा बहु-अर्थी शब्द है जिसका विद्वानों एवं लेखकों ने विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया है। साहित्य में यह एक विशेष व्यक्तित्व का बोध कराने हेतु प्रयुक्त होता है। जीव-वैज्ञानिक किसी खास प्राणी की विशेषता बताने के लिए इसका प्रयोग करते हैं, उदाहरणार्थ इस मुहावरे—"वंशानुगत चरित्र" में 'चरित्र' शब्द व्यक्तित्व के पर्याय के रूप में सामान्यतः प्रयुक्त होता रहा है। इस अर्थ में भी यह शब्द किसी नारी या पुरुष के कुछ खास गुणों का बोध कराता है।

परन्तु, 'चरित्र' शब्द का यह सम्पूर्ण अर्थ नहीं हुआ। यद्यपि 'चरित्र' में मानव-व्यक्तित्व का मनः संगठनात्मक अंश भी निहित है, इसका अर्थ इससे आगे

भी है। चरित्र मानव-जीवन का एक उच्चतर एवं ज्यादा गहरा पक्ष है। इसका अर्थ मनुष्य के मनोवैज्ञानिक कार्यों का प्रस्तुतीकरण मात्र नहीं है बल्कि इसमें मानव का नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष भी शामिल है। गॉरडन डब्ल्यू० एलपॉर्ट अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "पर्सनाल्टी" में लिखते हैं—"इसलिए चरित्र को मानव-व्यक्तित्व के निर्णयात्मक पक्ष के रूप में परिभाषित करने के बदले यह स्वीकरना ज्यादा सुन्दर है कि यह एक नैतिक अवधारणा है। (न्यूयार्क: मैकमिकल कम्पनी - पृ० ५२) इसके आगे वह जॉन आडम्स का उल्लेख करते हैं। जब वह कहते हैं—"चरित्र किसी मानव का नैतिक आकलन है, मूल्यांकन है।"

मैकॉगल कहता है—चरित्र एक जटिल संगठन है। "जटिल संगठन" कुछ वैसे गुणों की तरफ संकेत करता है जो स्वयं में यद्यपि अमूर्त्त है तथापि यह हमें चरित्र के बारे में एक निश्चित एवं मूर्त्त विचार प्रदान करता है। महान् मनोवैज्ञानिक स्वयं इसकी व्याख्या करते हैं—

"तब, इसके बावजूद, मनोविज्ञान की इस दिग्भ्रमित एवं पिछड़ी स्थिति के, विचारों एवं प्रयोगों का एक विचारणीय मिलन-विन्दु भी है जो चरित्र शब्द के इस अर्थ को उचित ठहराता है कि यह हमारे भीतर निहित उन चीजों की तरफ संकेत करता है जो हमारी इच्छाओं में उच्चतर कार्य-कलापों में, कार्यों के नियंत्रण में, जीवन संघर्ष में धीरे-धीरे एक निश्चित आकार लेता है और जो इसीलिए बिखराव के लिए भी उत्तरदायी है—अवश्य ही एक जटिल संगठन है।" (द इनर्जीज ऑफ मैन, विलियम मैकडूगल, चतुर्थ संस्करण। पृ०-१८८)

'चरित्र' समूचा आंतरिक व्यक्तित्व है जो मानव-जीवन के अनेक भूत एवं वर्त्तमान काल के तत्वों का मिलाजुला परिणाम है। स्वामी विवेकानन्द इसे मानव के भूतकाल की प्रवृत्तियों के कुल योग के अर्थ में ग्रहण करते हैं —

'चूँकि सुख एवं दुःख मानवात्मा के समक्ष आते-जाते रहते तथा इसपर विभिन्न छाप छोड़ते हैं— इन छापों के सम्मिलित परिणाम को मानव का चरित्र कहा जाता है। यदि आप किसी व्यक्ति के चरित्र को लें तो पाएंगे कि यह वस्तुत: उसकी प्रवृत्तियों का कुल योग है, उसकी मानसिक रुचियों का कुल योग है।"

इस प्रकार, हम देखते हैं कि चरित्र मानव के शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक कार्यों के कुल योग के परिणाम के रूप में एक जटिल संगठन है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि वस्तुत: व्यक्तित्व की दृढ़ता और उसमें छिपी हुई दिव्यता के दिन-प्रतिदिन प्रस्फुटित होने का मार्ग ही चरित्र है। यह अपने शीर्ष विन्दु पर पहुँचा हुआ तभी माना जाएगा जब मानव अपने भीतर की दिव्यता को पूर्णत: महसूस कर लेता और सारे बंधनों से मुक्त हो जाता है।

चरित्र - निर्माण कैसे होता है ?

हमलोग अपने पुनर्निर्माण की शक्ति स्वयं में रखते हैं। इस शक्ति का किसी उच्चतर लक्ष्य की ओर समुचित प्रयोग चरित्र का निर्माण करता है। चरित्र अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा के पुनर्गठन की विधि है। यह स्वत: प्रकृतित: जीव में उत्पन्न होने वाले भौतिक गुणों या मूल प्रवृत्तियों की तरह किसी विकासात्मक प्रक्रिया का परिणाम नहीं है। चरित्र एक ऐसी चीज है जिसका निर्माण एक निश्चित एवं उच्चतर लक्ष्य की तरफ अपनी पूरी सत्ता के साथ सतर्कता पूर्वक गुजरने के क्रम में होता है। जब कोई पुरुष या नारी सच्चे अन्त:करण से कुछ निश्चित उच्च मूल्यों एवं आध्यात्मिक गुणों को प्राप्त करने की चेष्टा करता है/करती है। अनैतिक (एवं अनाध्यात्मिक) कार्यों से स्वयं को रोकता/रोकती है और अपने व्यक्तित्व के गठन की चेष्टा करता/करती है, मात्र तभी चरित्र का निर्माण होता है। दृढ़ इच्छा-शक्ति चरित्र-निर्माण का एक महत्वपूर्ण तत्व है। सतर्क एवं दृढ़ इच्छा-शक्ति के साथ व्यक्तित्व के पुनर्गठन एवं मानव-जीवन के उच्चतम

लक्ष्य की प्राप्ति की चेष्टा चरित्र-निर्माण के मार्ग का एक अपरिहार्य अंग है।

चरित्र - निर्माण के मार्ग—

प्राचीन भारतीय ऋषियों एवं योगियों ने मानव-प्रकृति की गहरी पड़ताल कर चरित्र-निर्माण के मूलभूत सिद्धांतों की खोज की थी। यम एवं नियम के नाम से प्रचलित ये सिद्धांत सारे योग-मार्ग की नींव हैं। उन्होंने पाया था कि आदतों से ही चरित्र बनता है और किसी की आदतों को बदल कर उसके चरित्र को रूपान्तरित किया जा सकता है।

यह भी कहा जाता है कि आदतों के समूह का ही नाम चरित्र है तथा हम जानते हैं कि किसी कार्य के बार-बार करने से उसकी आदत बनती है। एक छोटे परीक्षण से देखें कि आज जो कार्य स्वत: हो जाता है, वह प्रारंभ में ऐसा आसान नहीं था। एक समय था जब वह कार्य कठिन था और सतर्कता पूर्वक कोशिश की माँग करता था। यदि कोई व्यक्ति किसी खास कार्य को अनगिनत बार दुहराता है तो वह कार्य उसके लिए आसान अथवा "स्वाभाविक" हो जाता है। कुछ समयोपरांत उसे जागरूक रहकर कोशिश करने की जरूरत नहीं रह जाती, कार्य स्वत: सम्पादित हो जाता है। इस प्रकार का स्थापित कार्य ही आदत है। इस प्रकार की समूची स्थापित आदतों को ही मनुज का चरित्र कहते हैं।

इस संदर्भ में एक दूसरा महत्त्वपूर्ण विन्दु जो ध्यातव्य है, यह है कि पहले कार्य के पीछे एक सतर्क चिन्तन होता था। एक मानसिक व्यापार भी कार्य के पीछे निहित होता था। यह प्रक्रिया मस्तिष्क पर एक छाप छोड़ती थी। प्रत्येक बार कार्य दुहराया जाता था, और वही-वही छाप बराबर मस्तिष्क (मन) पर उठता रहा। कार्य के द्वारा निर्मित ये छाप ही हिन्दू मनोविज्ञान में संस्कार कही जाती हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—"संस्कार को 'वंशानुगत प्रवृत्ति' के बहुत नजदीक माना जा सकता है। मन के लिए तालाब का रूपक प्रयुक्त करते हुए कह सकते हैं कि प्रत्येक लहर जो मन में उठती है, शान्त होने पर भी पूर्णत: मृत नहीं होती बल्कि, एक चिह्न छोड़ जाती है। इसी लहर के पुन: उठने की संभावना का चिह्न 'संस्कार' है। प्रत्येक कार्य जो हम करते हैं, शरीर की प्रत्येक गति, सोचा गया प्रत्येक विचार मनोपदार्थ पर एक छाप छोड़ता है, और यदि कदाचित् ये छाप मानस-पटल पर स्पष्ट नहीं हुईं तो भी इतनी मजबूत होती हैं कि अचेतन के रूप में सतह के नीचे कार्य करती हैं। प्रत्येक क्षण में हम क्या हैं—इसका निर्णय मस्तिष्क पर अंकित इन्हीं छापों के कुल योग के बराबर होता है। इस विशिष्ट क्षण में मैं जो हूँ—अपने विगत जीवन की सम्पूर्ण छापों के कुल योग के प्रभाव-स्वरूप हूँ। यही चरित्र का तात्पर्य है। (कम्प्लीट वर्क्स-वाल्यूम १, पृष्ठ-५४)

स्वामीजी द्वारा किये गये उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि कर्म या कार्य ही हमारे चरित्र-निर्माण के पीछे वास्तविक शक्ति है। कर्म एक तटस्थ शक्ति है। कर्त्ता द्वारा दिये गये इस महान् बल के निर्देश के अनुसार-यह 'कर्म' अपने कर्त्ता का निर्माण या ध्वंस कर देता है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन इस बात पर निर्भर करता है कि वह इस बल या 'कर्म' का किस तरह प्रयोग करता एवं अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

सामान्यत:, कर्म को दो वर्गों में रखा जा सकता है—अच्छा और बुरा। अच्छा कर्म जीवन में अच्छा परिणाम एवं बुरा कर्म बुरा परिणाम ही देता है। इसी तरह, अच्छे कर्म सुन्दर संस्कार बनाते तथा बुरे कर्म बुरी छाप छोड़ते हैं। अच्छे कर्म हमें और भी अच्छे कर्म करने को तथा बुरे कर्म और भी बुरे कर्म करने को प्रेरित करतेहैं। इस तरह, कर्म और संस्कार मिलकर -एक चक्रीय- पथ बनाते हैं जो चरित्र-निर्माण के लिए नींव का काम करते हैं। कर्म में निहित अतुल शक्ति को मन पर सुन्दर छाप छोड़ने के लिए प्रयुक्त करना चरित्र-निर्माण की तरफ प्रथम कदम बढ़ाना है। परन्तु, यह तबतक नहीं हो सकता जबतक हम स्वयं जीवन का एक उदात्त लक्ष्य (आदर्श) निश्चित नहीं कर

लेते। उच्चादर्श ही हमारी संवेदनाओं एवं आवेगों को जगाते तथा हमारी इच्छाओं को आदर्श-प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए, जीवन के लिए एक उच्चादर्श रखना—जिसके चारों ओर हम अपने चरित्र का निर्माण कर सकें—अच्छे चरित्र-निर्माण के हेतु मूल शर्त है।

चरित्र-निर्माण में उच्चादर्श का स्थान—

एक निश्चित आदर्श ही हमारे जीवन को अर्थ प्रदान करता तथा कर्म को दिशा-निर्देश देता है। उच्च लक्ष्य ही वह उद्देश्य है जिसके लिए जीवन बना है। प्रख्यात मनस्विद् जे० ए० हेडफील्ड कहते हैं—

"उच्चादर्श वह है जिसकी प्राप्ति से पूर्णता एवं आत्म-ज्ञान की उत्पत्ति होती है।" (सायक्लोजी एंड मोरल्स, लंदन –१९४९—पृष्ठ-९७)

उच्चादर्श एक धारणात्मक लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति जीव की सारी इच्छाओं को तृप्त कर देती है तथा इसे पूर्णता के अहोभाव से भर देती है। पूर्णता एवं सन्तुष्टि के लिए बेचैनी जीवात्मा की प्रारंभिक माँग है। सच्चा आदर्श—जब इसे निश्चित कर लिया जाता है—जीव की इस प्रारंभिक माँग को अवश्य ही सन्तुष्ट करता है।

जीवात्मा की शाश्वत प्यास क्षणभंगुर-चीजों से नहीं बुझ सकती—चाहे वे कितनी भी महान् एवं भव्य क्यों न हों। आध्यात्मिक ज्ञान और आत्म-ज्ञान ही मात्र जीवात्मा की मौलिक प्यास को पूर्णतः संतुष्ट कर सकते हैं तथा इसे पूर्णता एवं संतुष्टता (अहोभाविता) का भाव प्रदान कर सकते हैं। अतः मात्र एक ही ऐसा आदर्श है जिसके सहारे व्यक्तित्व-निर्माण तथा शानदार चरित्र-निर्माण हो सकता है—आध्यात्मिक आदर्श, आत्म-ज्ञान का आदर्श। और चूँकि सारी जीवात्माएँ पूर्ण ब्रह्म या ईश्वर का अंश हैं, अतः आत्म-ज्ञान का अर्थ हो जाता है ईश्वर-ज्ञान। सच है कि ईश्वरानुभूति के अतिरिक्त भी अनेक आदर्श हैं जिन्होंने नर-नारियों को व्यक्तित्व गठन एवं चरित्र-निर्माण की प्रेरणा दी है। उदाहरणार्थ—देशभक्ति का आदर्श या सामाजिक सुधार या राजनीतिक उपलब्धियाँ। यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है—क्या ये आदर्श एक पूर्ण एवं भव्य चरित्र के निर्माण के लिए काफी नहीं हैं?

उत्तर ऋणात्मक होगा। क्योंकि आदर्श के लिए यह आवश्यक गुण है कि स्वीकार कर लिए जाने के बाद यह अवश्य ही पूर्णता एवं संतुष्टि प्रदान करे। यदि हम उन लोगों के चरित्र का परीक्षण करें, जिन्होंने आध्यात्मिक आदर्श या ईश्वरानुभूति को त्यागकर उपर्युक्त आदर्शों के चतुर्दिक अपना चरित्र निर्मित किया है—तो पाएंगे कि उनके चरित्र का विकास मानव-व्यक्तित्व के कुछ अन्य उदात्त पक्षों की कीमत पर मात्र एक ही दिशा में हुआ है। चरित्र का यह एक-पक्षीय विकास अंततः जीवन में असंतोष, निराशा और यहाँ तक कि अंततः पूर्ण विनाश की तरफ ले जा सकता है। हिटलर एवं मुसोलिनी के जीवन इस बात के प्रमाण हैं कि तुच्छ आदर्श मानव-चरित्र को विकृत कर सकते हैं तथा अनगिनत लोगों के लिए दुःख का कारण बन सकते हैं।

कोई भी आदर्श—चाहे वह कितना भी महान् एवं भव्य क्यों न हो—यदि आध्यात्मिक आदर्श से कट जाता है तो नियत समय आने पर मानव में दोगलापन और संकीर्णता उत्पन्न करेगा ही तथा इस प्रकार उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को अवरुद्ध एवं अपंग करते हुए अंततः आध्यात्मिक-सर्वनाश तक पहुँचा ही देगा। दूसरी तरफ, यदि यही राष्ट्रीय, राजनीतिक या सामाजिक उच्चादर्श ईश्वरानुभूति के आध्यात्मिक आदर्श से भी संयुक्त है तो जीवन के उच्चतम लक्ष्य तक पहुँचाने का साधन उसको बनाया जा सकता है। जब ऐसे आदर्शों को लक्ष्य के बदले साधन बना लिया जाता है तथा ईश्वरानुभूति के उच्चतम आदर्श के नीचे रख लिया जाता है तो ऐसे आदर्श एक गांधी, एक अरविन्द, या एक तिलक का निर्माण करते हैं जिनका जीवन मानवता के लिए वरदान और स्वयं उनके लिए आशीर्वाद बन गया।

इस तरह, हम देखते हैं कि एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व और एक सम्पूर्ण चरित्र का तब तक निर्माण नहीं हो

सकता जबतक कि इसके आधार के रूप में एक आध्यात्मिक आदर्श नहीं होगा।

इच्छा-शक्ति की भूमिका—

चरित्र-निर्माण एक द्वि-पक्षीय मार्ग है- ऋणात्मक और धनात्मक। प्रारंभ में ही हमने देखा कि दृढ़ इच्छा-शक्ति चरित्र निर्माण में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जैसे ही आदर्श निश्चित किया जाता है, व्यक्ति को स्वयं की परीक्षा करनी होती है और देखना होता है कि कौन से आवेग, संवेदन एवं गुण उसके व्यक्तित्व में हैं जो आदर्श के अनुकूल हैं तथा उसके कौन-कौन से आवेग, संवेदन और कार्य उसके आदर्श के विपरीत एवं आदर्श की प्राप्ति के मार्ग में बाधा-स्वरूप हैं। प्रारंभ में ही व्यक्ति को उन आवेगों एवं संवेदनों को नियंत्रित करना पड़ता है जो उसकी आदर्श-प्राप्ति के विकास-मार्ग को अवरुद्ध करते हैं तथा उन आदतों को छोड़ना पड़ता है जो अच्छे चरित्र के निर्माण में बाधक हैं।

अब यहीं पर इच्छा-शक्ति का स्थान आता है। किसी के व्यक्तित्व में मात्र सुन्दर एवं असुन्दर की तलाश अथवा संवेदनाओं एवं संवेगों की तलाश ही चरित्र-निर्माण के लिए काफी नहीं है। व्यक्ति को इसके साथ ही अपनी इच्छा शक्ति को लगाना होगा तथा उन संवेगों एवं संवेदनों को नियंत्रित करना होगा जो आदर्श-प्राप्ति के लिए बाधक हैं तथा उन भावों एवं संवेदनों को उर्वर बनाना होगा जो अच्छे चरित्र-निर्माण के लिए सहायक हैं। हम यहाँ पर इच्छा-शक्ति संबध में दार्शनिकों के विचारों का परीक्षण नहीं करेंगे, न ही इसके आध्यात्मिक अर्थ एवं इसकी मुक्ति के विस्तार आदि की बात करेंगे। हम मात्र यह देखेंगे कि इच्छा-शक्ति किस तरह काम करती है तथा हम अपने आदर्श की प्राप्ति हेतु इसका उपयोग किस तरह कर सकते हैं।

सारे व्यावहारिक उद्देश्यों में, इच्छा-शक्ति को चित्त के एक अंश की क्रिया के रूप में हम मान सकते हैं। जब हमें कोई आदर्श अच्छा लगता है, यह हममें इसे पाने के लिए एक दृढ़ आकांक्षा को गतिशील करता है। यह आकांक्षा संवेदनों एवं संवेगों के सहयोग से इतनी गहरी एवं शासिका हो जाती है कि यह उन तमाम संवेगों-संवेदनों को शमित कर देती है जो आदर्श-प्राप्ति के अनुकूल नहीं हैं। तथा, हमें ऐसे काम करने को उत्प्रेरित करती एवं ऐसे संवेगों-संवेदनों को पाल कर रखती है जो आदर्श के अनुकूल हैं। इसी स्तर पर गहरी आकांक्षा 'इच्छा-शक्ति' बन जाती है। यही इच्छा-शक्ति आगे चलकर निश्चित प्रयोग एवं व्यवहार के द्वारा और भी मजबूत होती चलती है। जब सर्वप्रथम कोई रुचिकर आदर्श हमारी आकांक्षा को उत्प्रेरित करता है तो पूर्वकाल की आदतों के द्वारा उनका विरोध होने की संभावना रहती है। इस धरातल पर आकांक्षा इच्छा-शक्ति नहीं हो पाती। आदतजन्य-बल इस आरंभिक (नवजात) इच्छा को दबा देने की कोशिश करते तथा व्यक्ति को उसके सम्मुख झुकने को विवश करते हुए पुराने मार्ग पर ही लगाना चहते हैं। पर वे, जो सुन्दर चरित्र बनाना चाहते हैं– इनके समक्ष झुकते नहीं बलिक और भी शक्ति के साथ उनके विरुद्ध लड़ने को कटिबद्ध हो जाते हैं। वे बराबर नवजात इच्छा को कुचल देना चाहते हैं (जब भी इच्छा की जाती है) तथा बार-बार की आदत से एक शक्तिशाली एवं दृढ़ इक्छा शक्ति का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के आदमी के मनोमस्तिष्क के लिए ऐसी पूर्णत: विकसित एवं प्रौढ़ इच्छा-शक्ति एक स्थायी हिस्सा बन जाती है। इस तरह, अभ्यास के द्वारा, व्यक्ति इच्छा-शक्ति को जन्म देता तथा अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करता है। इच्छा-शक्ति को विपरीत दिशा में खींच ले जाने वाली उसकी पुरानी आदतें धीरे-धीरे अपनी शक्ति खो देती हैं।

जो प्रवृतियाँ मानव को आधार रहित बनातीं और उसके चरित्र को गिराती हैं उनको दबाने के लिए कितने समय तक मानव को अपनी इच्छाओं को बलवान बनाना और अभ्यास करना पड़ेगा? किस स्थिति में हम कह सकते हैं कि एक आदमी अच्छे चरित्र वाला होता है?

स्वामी विवेकानन्द ने एक पूर्णतः सुन्दर चरित्र की कसौटी दी है। महान् स्वामी कहते हैं—

जब एक आदमी बहुत अधिक अच्छे कर्म कर चुकता है और बहुत से उच्च विचारों को अपना लेता है तब उसके भीतर अपने से विरुद्ध काम करने की प्रबल प्रवृत्ति जाग उठती है तथा वह चाहकर भी किसी को बुराई नहीं कर सकता, उसकी प्रवृत्तियाँ उसे वापस मोड़ती हैं और वह पूर्णतः सु-प्रवृत्तियों के अधीन हो जाता हैं। जब ऐसी स्थिति आ जाय तब कहा जाएगा कि उस आदमी का सुन्दर चरित्र अब स्थापित (दृढ़) हो गया

(कम्प्लीट वर्क्स– वाल्यूम—१, पृ० – ५४-५५)

इसी कसौटी पर हमें अपने चरित्र का निर्णय करना होगा। हमें अपनी परीक्षा करनी होगी तथा देखना होगा कि वे कौन-सी प्रवृत्तियाँ हैं जो हमारे चरित्र में मुख्य हैं। हमें पता लगाना होगा कि हमारे कर्मों के पीछे हमारी मूल नीयत क्या रही है। हमारे जीवन में दृढ़ आत्म-परीक्षण तथा अंतः परीक्षण का होना अनिवार्य है। चरित्र-निर्माण एक सतत प्रक्रिया है तथा हमें इसके लिए सदा सावधान रहना होगा। यदि हमारी सु-प्रकृतियाँ दिन-प्रतिदिन बलवान होती जा रही हैं तभी हम कह सकते हैं कि हम सुन्दर चरित्र की प्राप्ति की तरफ सही दिशा में अग्रसर हो रहे हैं !

शुभ कर्मों और विचारों को तीव्र करो –

मनुष्य ने विद्युत-शक्ति पर काबू पाने के नियमों को खोजा तथा उनको लागू कर वह उस महान् शक्ति का स्वामी हो गया। आज वह इस शक्ति को अपने सेवक की तरह प्रयुक्त कर रहा है। ठीक इसी तरह, यदि एक आदमी मन पर काबू पाने के नियमों को जानता है तो उन नियमों के प्रयोग द्वारा वह मन पर काबू पा सकता है तथा अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने में इस (मन) की शक्ति का सुन्दरतम उपयोग कर सकता है। स्वामी विवेकानन्द हमें बताते हैं—

"जब लोग बुरे कर्म करते हैं तो वे और भी बुरे होते जाते हैं और जब वे अच्छा कर्म करना शुरू करते हैं, तो वे अधिकाधिक बलवान होते जाते हैं तथा सदा सर्वदा अच्छे कर्म ही करना सीख जाते हैं। (कम्प्लीट वर्क्स – वाल्यूम १, पृ० ८१।)

इसलिए, चरित्र-निर्माण हेतु हम इसे आधारभूत नियम के रूप में स्वीकृत कर सकते हैं कि सुकर्मों को बार-बार दुहराने से तथा सुन्दर विचारों को बार-बार सोचने से सुन्दर चरित्र और भी दृढ़ हो जाता है। पतंजलि के योगसूत्र के प्रथम अध्याय के १२वें सूत्र की मीमांसा करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने इस नियम की बहुत सुन्दर व्याख्या की है। उन्हीं के शब्दों में—

"हम अभ्यास क्यों करें ? क्योंकि, हमारा प्रत्येक कर्म तालाब की सतह पर उठने वाली लहर की तरह है। कम्पन के नष्ट हो जाने के बाद क्या शेष रहता है ? संस्कार, छाप। जब मन पर इस प्रकार की असंख्य छाप अंकित हो जाती हैं तो वे एकीभूत होकर—'आदत' बन जाती हैं। कहा गया है—"आदत मनुष्य की दूसरी प्रकृति है।" प्रथम तो प्रकृति भी है तथा उसकी पूरी प्रकृति या वह जो भी है—अपनी आदतों का ही परिणाम है। इससे हमें आश्वासन मिलता है, क्योंकि आदत ही मात्र ऐसी चीज है जिसे हम कभी किसी भी समय बना या बिगाड़ सकते हैं। मन के ऊपर से इन कम्पनों के गुजरने के बाद संस्कार शेष रहते हैं—अपना-अपना परिणाम छोड़ते हुए। ऐसे ही चिह्नों (छापों) के कुल योग का नाम है संस्कार और इसी के अनुरूप, जब कोई विशेष लहर उठती है तो व्यक्ति उसे पकड़ लेता है। यदि अच्छी लहर मिली तो आदमी अच्छा हुआ, यदि बुरी मिली तो बुरा, यदि प्रसन्नता मिली तो व्यक्ति प्रसन्न हुआ। बुरी आदतों से छुटकारे का एक ही मार्ग है—प्रति-आदत। अपना प्रभाव छोड़ जाने वाली तमाम आदतों को अच्छी आदतों के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। सदा सु-कर्म करते चलो, पवित्र विचारों को ग्रहण करते चलो—सतत। मात्र यही उपाय है बुरी आदतों से बचने का। कभी किसी व्यक्ति को "न सुधरने

वाला" मत कहो, क्योंकि वह तो चरित्र का प्रतिनिधित्व मात्र करता है, एक आदतों के समूह का प्रतिनिधित्व—जिनको नयी एवं सुन्दरतर आदतों द्वारा रोका जा सकता है। बार-बार दुहरायी आदतें ही चरित्र हैं तथा दुहरायी गयी आदतें मात्र ही चरित्र का सुधार कर सकती हैं।" (कम्प्लीट वर्क्स—वाल्यूम—१, २०७-८)

दुनिया के सबसे नीच पापात्मा के लिए भी मात्र यह परित्राणदायक संदेश है। कैसा भी पाप किसी व्यक्ति ने क्यों न किया हो, वह सदा के लिए विनष्ट नहीं हो गया। सदा के लिए वह नरक का निवासी ही नहीं हो गया। संसार के प्रत्येक पापी का भी एक भविष्य है। यह तो उसके बुरे कर्म हैं जिन्होंने उसे पापी बना डाला है। पर, प्रत्येक कर्म अच्छे कर्मों द्वारा नष्ट किया जा सकता है, प्रत्येक बुरी प्रवृत्ति अच्छी प्रवृत्ति के द्वारा नियंत्रित की जा सकती है। यदि बुरे कर्मों ने हमारे चरित्र को बुरा बना डाला है तो अच्छे कर्म उसी प्रकार उसे भला भी बना सकते हैं तथा चरित्र को सुन्दर बना सकते हैं। यह संदेश महान् उत्साह और आशा से भरा हुआ है। मानव चाहे मस्तिष्क की जिस स्थिति में या जीवन की जिस परिस्थिति में हो, उसी विन्दु से वह अपने चरित्र के पुनर्निर्माण की कोशिश द्वारा जीवन की नयी यात्रा का प्रारंभ कर सकता है।

मनुष्य अपने चरित्र का निर्माता स्वयं है। अपनी इच्छा से उसने कर्म की महान् शक्ति उपलब्ध की है। यदि बुरे कर्मों ने आज उसे पापी बना डाला है, तो यह हजारों बार अधिक सत्य है कि उसके अच्छे कर्म उसे कल महात्मा भी बना देंगे। क्योंकि वस्तुतः मनुष्य तो देवता है, पापात्मा नहीं। जब मनुष्य कर्म की शक्तियों का प्रयोग करना शुरू करता है, तो उसका मन पवित्रतर होने लगता है। सुन्दर कर्मों की शक्ति जैसे ही आत्मा के ऊपर के आवरण को फाड़ती है, आत्मा का प्रकाश तुरन्त तीव्र से तीव्रतर होकर—प्रस्फुटित होने लगता है। परिणाम होता है—बुरी प्रवृतियों पर नियंत्रण तथा तत्क्षण ही अच्छी प्रवृतियों का उत्प्रेरण। और एक समय आता है जब मानव की चेतना और उसका मन बुरे कर्म करने या बुरे विचार आने से पूर्णतः असमर्थ हो जाते हैं। मात्र तभी किसी आदमी को दृढ़चरित्र वाला कहा जा सकता है। मात्र वही आदमी मुक्त है जो सदा सुन्दर विचार करने, बोलने और कर्म करने के लिए मुक्त है। सच्ची मुक्ति पवित्र चरित्र की नींव पर ही खड़ी हो सकती है।

(प्रबुद्ध भारत : नवम्बर १९८१ से श्री सुरेश कुमार मिश्र द्वारा अनूदित—सं०)

●

यह संसार कायरों के लिए नहीं है। पलायन की चेष्टा मत करो। सफलता अथवा असफलता की चिन्ता मत करो। पूर्ण निष्काम संकल्प में अपने को लय कर दो और कर्त्तव्य करते चलो। ……… कर्म में तुम्हारा अधिकार है, पर इतने पतित मत बनो कि फल की कामना करने लगो। अनवरत कर्म करो पर अनुभव करो कि कर्म पीछे भी कुछ है। सत्कर्म भी मनुष्य को महान बन्धन में डाल सकते हैं। अतः सत्कर्मों के, अथवा नाम और यश की कामना के, बन्धनों से मत बँधो। जिन्हें इस रहस्य का ज्ञान हो जाता है; वे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं; अमर हो जाते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वाध्याय

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

क्रियायोग का दूसरा अंग है स्वाध्याय। सत्साहित्य के पठन-पाठन एवं श्रवण को सभी धर्म शास्त्रों में सर्वोच्च महत्व प्रदान किया गया है। ध्यान और जप के समकक्ष नियमित स्वाध्याय भी प्रत्येक साधक की साधना का अनिवार्य अंग है। स्वामी विवेकानन्द की मान्यता थी कि स्वाध्याय एवं विद्याध्ययन के अभाव में धर्म संघों का ह्रास हो जाता है। साधुसंग जो आध्यात्मिक जीवन के लिए इतना आवश्यक है, आसानी से प्रप्त नहीं होता। इसकी पूर्ति सत्साहित्य करता है। सत्साहित्य हमें कुछ क्षणों के लिए परमात्मा के सान्निध्य में ला खड़ा करता है, तथा मन को सद्‌विचारों से पूर्ण एवं कुविचारों से रिक्त करता है। शास्त्र आत्म-निरीक्षण में सहायक होते हैं। वे दर्पण की तरह हैं, जो हमारे मन में छुपे दोषों को प्रकट करते हैं। इससे विषय-चिन्ता क्षीण होती है। यदि ध्यान को चित्त की एकतानता कहा जाता है तो स्वाध्याय को वाक्य एकतानता की संज्ञा दी जा सकती है। यदि हम प्रार्थना द्वारा अपनी बात प्रभु तक पहुचाते हैं तो प्रभु सन्तों की वाणी एवं शास्त्रों के माध्यम से हम तक पहुँचते हैं तथा हमारी प्रार्थना का उत्तर देते हैं। ध्यान और प्रार्थना यदि हमारे आवेदन हैं, तो सत्साहित्य व शास्त्र प्रभु की ओर से हमारे लिए उनके आदेश हैं।

स्वाध्याय की पद्धति—

जितना लाभ सत्साहित्य से होता है उतनी ही हानि असत् साहित्य के अध्ययन से होती है। इस कथन की सत्यता का सभी साधकों को तब अनुभव होता है जब अपने पूर्व जीवन में रुचिपूर्वक पढ़े गये असत् साहित्य के स्मृति-चित्र साधना के समय उसके मन में उठकर उसे विक्षिप्त करते है। अतः स्वाध्याय जितना आवश्यक है, अवांछनीय एवं अहितकर साहित्य का परित्याग भी उतना ही आवश्यक है। दुर्भाग्य है कि इस विषय में अनेक साधक सजग नहीं होते। असत् साहित्य का निषेध स्वाध्याय की दिशा में पहला कदम है।

अपराध एवं यौन विषयक साहित्य तो निश्चित रूप से हानिकारक है ही। उसे तो छूना तक नहीं चाहिए। इसके अतिरिक्त सांसारिक, सामाजिक विषयों पर आधारित साहित्य, शृंगार, करुण एवं इसी प्रकार के अन्य भावोद्दीपक उपन्यास, नाटक, कहानियाँ आदि भी साधक के लिए उपयोगी नहीं। इसी प्रकार राजनीति विषयक सामग्री से भी अध्यात्म पथ के पथिक का कोई लेना देना नहीं रहता। इस सन्दर्भ में स्मरणीय है कि श्रीरामकृष्ण समाचार पत्रों को छू तक नहीं सकते थे, क्योंकि उनमें विषय - चर्चा होती है। वर्तमान समय में तो समाज के नैतिक स्तर के पतन के साथ ही साथ तत्संबन्धी समाचारों के पूर्ण समाचार पत्रों का पठन निश्चित रूप से विक्षेप-कारक हो गया है।

सत्साहित्य—जो शास्त्रीय, ग्राह्य एवं उपादेय है, उसके भी दो प्रकार होते हैं। किसी सिद्धांत के प्रतिपादन एवं सिद्धि के लिए जिस साहित्य में युक्ति एवं तर्क का बाहुल्य होता है उसे 'वाद' कहते हैं। सिद्धांत की सिद्धि के बाद केवल उसी की दृढ़ता के लिए अनेक शास्त्र होते हैं। जो 'सिद्धान्त' कहलाते है। प्रारंभ में जीवन का लक्ष्य एवं साधन-पद्धति के निर्धारण के लिए वाद की आवश्यकता साधक को भी होती है। उसे चाहिए कि वह विषय के सभी पहलुओं पर विचार कर ले, जिससे आगे चलकर संशयादि उत्पन्न न हों। लेकिन एक बार सिद्धांत का निर्धारण होने के बाद 'वाद' श्रेणी के शास्त्रों की

आवश्यकता नहीं रहती। यही नहीं, वे साधना में बाधक भी हो सकते हैं। तीन प्रकार का साहित्य साधक के लिए प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी होता है। (१) जो साहित्य आत्मा एवं परमात्मा के स्वरूप का दिग्दर्शन करे एवं भगवत् प्रेम की वृद्धि करे। (२) जो साधना पद्धिति का निरूपण करे एवं (३) जो संसार-बन्धन एवं आसक्ति का स्वरूप बताकर उन्हें दूर करने का उपाय बताये। सन्त महापुरुषों की जीवनियाँ इस दृष्टि से बहुत उपयोगी होती हैं।

बहुत से भक्त नियमित रूप से प्रतिदिन 'गीता', भागवत्, रामचरित मानस आदि का पारायण करते हैं। यह एक बहुत प्रशंसनीय आदत है। लेकिन कभी-कभी यह अभ्यास यंत्रवत् हो जाता है। तब उससे उतना लाभ नहीं मिल पाता, जितना मिलना चाहिए। ध्यानपूर्वक, गहराई से, एवं मनन के साथ किया गया स्वाध्याय अधिक लाभ प्रद होता है। ऐसा न हो कि मुँह से हम उच्चारण करते रहें और मन कहीं और भटक रहा हो। यह आवश्यक नहीं कि बहुत से धर्म शास्त्रों को पढ़ा जाय। एक ही ग्रन्थ को एकाग्रतापूर्वक, उसके अर्थ को भली प्रकार हृदयंगम करते हुए पढ़ने से कहीं अधिक लाभ होता है। यही नहीं, ज्यों-ज्यों साधक आगे बढ़ता जाता है, वह अनुभव करने लगता है कि एक ग्रन्थ का एक अध्याय ही उसके लिए पर्याप्त है—उसमें ही इतना ज्ञान, इतनी बातें विद्यमान हैं जो उसके सारे जीवन के लिए पर्याप्त हैं। और अन्त में तो गीता का एक श्लोक, स्वामी विवेकानन्द के साहित्य का एक पाराग्राफ, श्रीरामकृष्ण वचनामृतम का एक पृष्ठ अथवा रामचरित मानस की एक चौपाई ही उसे दिनभर के चिन्तन के लिए यथेष्ट सामग्री प्रदन करने लगेगी। इस सन्दर्भ में स्मरणीय है कि स्वामी तुरीयानन्द जी गीता के एक-एक श्लोक पर घंटों मनन एवं ध्यान किया करते थे। स्वाध्याय का उद्देश्य हमारे अध्ययन के क्षेत्र का विस्तार करना नहीं, बल्कि उसकी गहराई में जाना है।

गहन चिन्तन की दिशा में लेखन एवं सत्साहित्य के अंशों का अनुवाद अत्यन्त सहायक होते हैं। इन कार्यों में मन को अधिक एकाग्र करना पड़ता है। प्रत्येक शब्द के वास्तविक अर्थ को हृदयंगम किये बिना उसका ठीक-ठीक अनुवाद हो ही नहीं सकता। गीता का श्लोक मात्र पढ़ लेने के बदले यदि लिखा जाये तो स्पष्ट ही है कि इस कार्य में अधिक एकाग्रता की आवश्यकता होगी। मौलिक लेखन कार्य में भी अपने विचारों को सुनियोजित करना आवश्यक होता है, जो मानसिक व्यायाम का कार्य करता है।

यदि हम मन ही मन कोई पुस्तक पढ़ें तो उसमें केवल हमारे नेत्र एवं मन कर्य करते हैं। लेकिन हम उच्चारण करते हुए पढ़ें और जिस वाक्य को पढ़ रहे हों उस पर अंगुली रखते जायें तो नेत्र, जिह्वा, कर्ण, स्पर्शेन्द्रिय एवं मन ये सभी कार्यरत होंगे। अतः बोल-बोल कर पढ़ना अधिक उपयोगी है।

कुछ लोगों को एक ही विषय से सम्बन्धित सुन्दर बातों को विभिन्न पुस्तकों से निकाल कर एक साथ संग्रहीत करने की अभिरुचि होती है। ध्यान, शरणागति, सेवा, त्याग आदि विषयों पर विभिन्न सन्त महात्माओं ने क्या कहा है, भिन्न-भिन्न धर्मग्रन्थों में क्या लिखा गया है, इसे एक साथ लिख रखना एक रोचक एवं स्वस्थ अभिरुचि है। हम तत्काल उन सभी बातों को अपने जीवन में उतार न सकें तो भी इससे एक शुभ संस्कार तो मन पर अवश्य पड़ता है जो स्वाध्याय का उद्देश्य है।

स्वाध्याय अकेले, एक दो व्यक्तियों के साथ या सामूहिक रूप में किया जा सकता है। इन तीनों पद्धतियों का अपना-अपना महत्व है। कभी हम एकान्त चाहते हैं—स्वाध्याय के माध्यम से प्रभु के साथ आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए, तो कभी एक दो मित्रों के साथ किसी विषय की चर्चा कर उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहते हैं और कभी सामूहिक रूप में स्वाध्याय कर भक्ति पूर्ण वातावरण का निर्माण करना चाहते हैं। जो निम्नगामी मन केवल व्यक्तिगत प्रयास से उठाया नहीं जा सकता, वह सामूहिक सत्संग से, भक्तों के साथ स्वाध्याय

करने से सहज ही में उर्ध्वगामी हो सकता है। पढ़ने के
लिए पढ़ना और पढ़ाने के लिए पढ़ना, दोनों में अन्तर
है, जिसे सभी अध्यापक भली भांति जानते हैं। पढ़ाने के
लिए पढ़ने पर विषय को अच्छी तरह हृदयंगम करना
होता है। यदि किसी साधक को शास्त्र-ग्रन्थों के अध्या-
पन का कार्य करना पड़े तो निश्चित रूप से वह उसके
लिए लाभकर सिद्ध होगा। हाँ उसकी दृष्टि केवल अध्या-
पन की ओर नहीं, स्वंय के अध्ययन एवं आध्यात्मिक
लाभ की ओर भी होनी चाहिए।

खतरे एवं सावधानियाँ—सभी आध्यात्मिक साधनों
के अनुष्ठान में कुछ सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं।
अन्यथा साधक की प्रगति अवरुद्ध हो सकती है। साधना
का उद्देश्य सदा स्मरण रखना चाहिए। स्वाध्याय का
उद्देश्य है मन को शुद्ध एवं उच्चतर चिन्तन के लिए
तैयार करना जिससे वह भगवत् - साक्षात्कार के लिए
समर्थ हो सके। इस लक्ष्य को भूलने से स्वाध्याय एक
व्यसन का रूप लेकर स्वयं एक बाधा बन सकता है।
बहुत से शास्त्रों के पढ़ने की वासना शास्त्रैषणा कहलाती
है, और बहुत से साधक इसके शिकार हो जाते हैं।
उनकी शास्त्र जिज्ञासा की कमी समाप्ति ही नहीं होती
और वे एक के बाद दूसरा ग्रन्थ पढ़ते चले जाते हैं। उन्हें
इस अध्ययन में बौद्धिक रस या आनन्द का अनुभव होता
है, जो उनके मन को एक कार्य भर प्रदान करता है—
इससे अधिक और कुछ नहीं। दूसरों को पढ़ाने की, उप-
देश देने की, वासना भी कुछ साधकों को नयी-नयी
पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं। यदि पढ़ते समय
मन में यह विचार उठते रहें कि अमुक बात बहुत अच्छी
है, मैं इसे दूसरों को सुनाऊँगा— तो साधक लक्ष्य से च्युत
हो जाता है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि दूसरों को
मारने के लिए तो ढाल-तलवार की आवश्यकता होती
है लेकिन स्वयं को मारने के लिए एक सुई ही काफी है।
इसी तरह दूसरों को सिखाने और उपदेश देने के लिए
भले ही बहुत से शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता हो,
लेकिन स्वयं के लिए थोड़ी सी बात ही पर्याप्त है।
स्वाध्याय जितना आवश्यक है, उतना ही ठीक है।
अधिक नहीं। हाँ, यदि अत्यधिक चंचल मन ध्यान में
बैठ ही न सके, एकाग्र हो ही न सके, तो ऐसे मन को
निम्न स्तर पर जाने से तथा तामस में पतित होने से
रोकने के लिए पठन पाठन में लगाये रखना बहुत उप-
योगी सिद्ध होता है। इससे मन आध्यात्मिक स्तर पर
उठने में असमर्थ होते हुए भी बौद्धिक स्तर पर बना रहता
है—दैहिक अथवा स्थूल भौतिक स्तर पर उतर
नहीं आता।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।...... स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको
मौद्गल्यः। तद्धि तपस्तद्धि तपः।

— तैत्तिरीय उपनिषद्

अर्थात् सदाचार का पालन तथा शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन करना चाहिए। सत्यभाषण
एवं स्वाध्याय और प्रवचन भी साथ-साथ करना चाहिए। इन्द्रियों का दमन और आध्यात्मिक
ग्रंथों का पठन-पाठन भी करना चाहिए। मन का निग्रह और सद्ग्रंथों का अध्ययन एवं प्रवचन
एक साथ करना चाहिए।..... नाक मुनि कहते हैं, हे मौद्गल्य, स्वाध्याय एवं प्रवचन ही सर्व-
श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वही तप है, वही तप है।

स्थित-प्रज्ञ

- सुरेश कुमार मिश्र
लोक महाविद्यालय, बनियापुर (सारण)

अभी-अभी शान्त और चिन्तनहीन हो गया मेरा मन
वर्षा में नहाए चुपचाप खड़े यूक्लिप्टस के जवान पेड़ की तरह।
हवा की कोई छेड़छाड़ नहीं।
पल्थी मारे बैठी है जाड़े की सुनहरी कुनकुनी धूप।
सारी निराशा, भय, तनाव और उद्वेग को मुट्ठी में कसे—
मन की नाव लग गयी देह के लंगड़ के सहारे—
एक अनाम, अनिर्वच यात्रा के प्रस्थान-विन्दु पर.................।
सचमुच,
कितना अच्छा है !
चतुर्दिक के क्षणिक संबंधों को
जीर्ण कपड़े-सा उतार बगल में रख देना,
सारे ऐन्द्रिक औजारों का सारहीन, धारहीन हो जाना,
आस्था की कोमल किरण को छू पाना,
पंचेन्द्रियों का उत्सव मनाना,
अतीत का सब कुछ गलना—
कुआँ, खोंप, खेत,
नींद, शहर, जंगल, आग और पपीते का पेड़।
सार्त्र-फ्रायड, माओ-मार्क्स, कबीर-तुलसी,
संसद-सड़क, शिक्षा-कला, सभ्यता, प्रेम,..................।
हे मेरे मन-वृक्ष !!
तुम किसी भी रूप में मिलो,
किसी भी रंग, गंध, स्थिति या शून्य में—
तुमको स्वीकार कर, निहार कर ही मैं बढ़ूँगा,
तुम्हारे इस क्षण को, इस क्षण की अद्वितीयता को,
इस क्षण में समाए समूचे ब्रह्मांड की द्वयता को स्वीकार कर,
ताकि,
अखंड-आनन्द की दुग्धश्वेत और निर्लेप गिलहरी फुदकती रहे—अहर्निश।
बंद पपनियों की कोर पर उठाता रहूँ—
चेतना की पीयूष धार।
महसूस सकूँ—ब्रह्मांड के नाभिकुंड से निकली अनंत ऊर्जा की ऊष्मा, और—
ठेल सकूँ,—परे—
दिक् और काल।

एक चित्र की अलौकिक कहानी

—प्रणवेश चक्रवर्ती

आस्ट्रिया की राजधानी प्राग में एक जाने-माने चित्रकार रहते थे—फ्रैंक डोराक। इस शती के प्रथम चरण में उनकी ख्याति पूरे यूरोप में थी। १८९३ ई० के शिकागो के धर्म-सम्मेलन में अपार यश प्राप्त करने के पश्चात् स्वामी जी ने दूसरी बार यूरोप की यात्रा की। स्वामी जी के अग्नि-युक्त भाषण और हिमालय जैसे व्यक्तित्व ने उस समय पूरे यूरोप में वैचारिक उथल-पुथल ला दी थी। कुछ लोगों का मंतव्य था कि ईसा मसीह का पुनः अवतरण हुआ है। दूसरे लोग कहते थे कि भगवान बुद्ध फिर से हमारे बीच आ गये हैं। धीरे धीरे, स्वामी विवेकानन्द जी के द्वारा बतायी, कामारपुकुर ग्राम के गदाधर चट्टोपाध्याय से सम्बन्धित, आश्चर्यचकित कर देने वाली कहानी को सब ने सुना। मनुष्य को बनाने वाले अपूर्व एवं कुशल शिल्पी के बारे में जानने के लिए उस समय के लोगों में बड़ा आग्रह था। उसी समय फ्रांस के जीवन में एक विचित्र घटना घटी।

आगे की घटना के सम्बन्ध में कुछ बताने के पूर्व फ्रैंक डोराक के सम्बन्ध में भी कुछ जानना आवश्यक है।

प्राग में फ्रांस का एक विशाल स्टूडियो था जिसे देखने के लिए लोग दूर-दूर से आते थे। फ्रैंक थे चिर कुमार। पूर्ण ब्रह्मचारी—जैसे। स्वभाव से पूर्ण निर-भिमानी। स्वयं-पाकी। नियमित जप-ध्यान करते। गीता उनका सर्वाधिक प्रिय ग्रंथ था तथा उसका वे नियमित पाठ करते।

घटना यूं घटी। फ्रांक ने एक रात एक सपना देखा—एक साधु महापुरुष। नींद टूट गयी। सोचने लगे—कौन है वह महात्मा ? विचार करने पर उन्होंने स्थिर किया कि वे अवश्य ही भारतीय महात्मा हैं। उन्होंने सुन रखा था—भारतवर्ष साधु-महात्माओं का देश है। पर, स्वप्न भूल नहीं सके। कौन है वह मनुष्य— यह चिन्ता मन को मथती रही।

इसी मानसिक अस्थिरता की स्थिति से गुजरते समय उनके हाथ में मैक्समूलर की प्रसिद्ध पुस्तक "रामकृष्ण का जीवन और वाणी" आयी। किताब का पन्ना पलटते ही वे चौंक उठे क्योंकि रामकृष्ण की एक तस्वीर किताब में थी। तस्वीर देख उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि जिनको स्वप्न में देखा था वह साधु-मूर्ति तो यही हैं। वे थे—श्रीरामकृष्ण। इस विस्मयपूर्ण घटना से वह रोमांचित हो गये। इसके पश्चात् वही स्वप्न-पुरुष उनके ध्यान-ज्ञान हो गये। सर्वदा वह अपने मानस-नेत्रों से श्रीरामकृष्ण की तस्वीर देखा करते। उस कलाकार की सादी कला-चेतना प्रदीप्त हो उठी। उन्होंने संकल्प लिया—जिस महापुरुष मे अपनी ही अपार कृपा से स्वप्न में दर्शन दिया, उनका वृहद् आकार का एक तैल चित्र वह अवश्य बनाएंगे।

इसी बीच उन्होंने श्रीरामकृष्ण के दिग्विजयी शिष्य स्वामी सारदानन्द एवं स्वामी विवेकानन्द से सम्पर्क स्थापित किया। मुलाकात भी हुई। स्वामी सारदानन्द के साथ घनिष्ठता बढ़ती रही और नियमित पत्राचार द्वारा सम्पर्क बना रहा।

श्रीरामकृष्ण के भाव-प्रवाह में जी रहे फ्रैंक डोराक ने अपना संकल्प स्वामी सारदानन्द को बताया तथा उनसे उनकी कुछ तस्वीरें भेज देने का आग्रह किया।

उस समय श्रीरामकृष्ण के मात्र तीन चित्र उपलब्ध थे— एक, समाधिस्थ बैठे हुए, दूसरा, केशवसेन के निवास स्थान पर दंडायमान खड़े तथा तीसरा—एक मकान के स्तंभ पर हाथ रखे दंडायमान खड़े। इसके पश्चात्, उन्होंने श्रीरामकृष्ण के मस्तक से छाती तक, यानी आधे भाग की एक तस्वीर बनाकर स्वामी सारदानन्द के पास भेजी। पर, इस चित्र से उनको पूरा संतोष नहीं था। फिर से वह इस उद्योग में लगे। उनको ठाकुर के सारे चित्र भेजे गये। इनमें से उनको केशवसेन के निवास-स्थान पर दंडायमान खड़ा चित्र पसन्द आया। पर, तो भी समस्या पूरी नहीं सुलझी क्योंकि इस चित्र में श्रीरामकृष्ण की आँखें बंद थीं। फ्रैंक चाहते थे कि आँखें खुली हों। इससे उनका भाव अधिक प्राणवंत होगा। यह भी चिन्ता थी कि आँखें खुली रहने पर उनके मूल चेहरे में किसी प्रकार की कमी न रह जाय। अनिर्णय की स्थिति में वह पड़े रहे।

स्वामी अभेदानन्द से ज्ञात होता है (मन और मनुष्य। पृष्ठ २०६-७) कि एक दिन फ्रैंक का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। इसी स्थिति में उनको एक अलौकिक पुरुष के दर्शन हुए। उनके मानस-नेत्रों से श्रीरामकृष्ण देव की महिमोज्ज्वल, ज्योतिर्मूर्ति प्रतिभासित हुई। कलाकार को प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, मानो श्रीरामकृष्ण की आँखें खुली हैं और उनमें अपार प्रेम एवं करुणा भरी है। साथ ही दृष्टि उदासीन एवं ध्यानमग्न।

फ्रैंक जिसे इतने दिनों से चाह रहे थे, मिला। तुरत वह अपनी तूलिका और रंग लेकर बैठ गये। उन्होंने भावसमाहित होकर अपने भाव-नेत्रों से श्री रामकृष्ण के दर्शन किये और उसी अपरूप चेहरे को चित्र में उतारना शुरू किया। धीरे-धीरे स्वप्न में देखा – अलौकिक सौन्दर्य मानो जीवित एवं प्रत्यक्ष हो उठा। एक साधक कलाकार की अपार श्रद्धा एवं साधना में श्रीरामकृष्ण ने स्वयं को पकड़वा दिया। सृजित हुआ एक अपूर्व चित्र।

(११ मार्च '८७ के "युगान्तर" दैनिक से, हिन्दी में डॉ० विमलेश्वर डे द्वारा रूपान्तरित]

□

'मैं जानता हूँ, 'रामकृष्ण' नाम ही इस युग का महामन्त्र है। जो भक्तिपूर्ण हृदय से पतित-पावन युगावतार ठाकुर का नाम जपेगा, उसके लिए भक्ति, मुक्ति सभी कुछ करामलकवत् है। 'रामकृष्ण' इस युग का गौरवान्वित महाशक्तिशाली नाम है। जीव की मुक्ति के लिए रामकृष्ण नाम जपना ही यथेष्ट है।.......जो कोई शरीर, मन और वाणी के द्वारा श्रीरामकृष्ण का आश्रय लेगा, उनका नाम जपेगा, वह मुक्त हो जायेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो राम हुए, जो कृष्ण हुए, वे ही इस युग में श्रीरामकृष्ण-रूप में आविर्भूत हुए हैं—जीव को मुक्ति देने के लिए।"

—स्वामी शिवानन्द

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक भक्त—कहाँ महाराज! हम लोग कहाँ कर पा रहे हैं? संसार में बाल-बच्चे लेकर ही तो हमलोग तकलीफ उठा रहे हैं। इसीलिए तो उन्हें पुकार नहीं पाते।

लाटू महाराज—हाँ सो तो उठाओगे ही! उन्हें भूलकर बाल-बच्चों में डूबे हुए हो, इसीलिए तो तुम लोगों को इतना कष्ट है। इन बाल-बच्चों को लेकर उन्हें पुकारो न! लड़कों को भी उन्हें पुकारना सिखाओ न—तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जायगा।

एक भक्त—महाराज! आप लोग संन्यासी हैं, गृहस्थों का दुःख ठीक-ठीक समझ न सकेंगे। बाल-बच्चों को लेकर हम लोग कितने असहाय हो जाते हैं, यह भला आप कैसे समझेंगे? उन्हें थोड़ा पुकारने बैठा हूँ, उसी समय लड़का चिल्ला उठता है- पिताजी, भूख लगी है। गीता लेकर पढ़ने बैठा हूँ, उसी समय दूसरा लड़का हठ करने लगा—पिताजी, थोड़ा पाठ समझा दीजिए न! थोड़ा विश्राम कर रहा हूँ, उसी समय गृहिणी आकर कहती है—बच्चे को थोड़ा पकड़ो न! सो रहा हूँ तो भी निस्तार नहीं है—बच्चा पुकार रहा है—पिताजी पेशाब लगी है। अच्छा बोलिए तो, इन सबके बीच हमलोग भला भगवान को कैसे पुकारें?

भक्त की बात सुनकर लाटू महाराज ने कहा—"अरे! कहाँ तुम लोगों का घर और कहाँ 'मोटे बाम्हन' का घर! वह तो जमींदार आदमी है। उसके घर में कितना पैसा है! उन लोगों को बाल-बच्चों का भार नहीं लेना पड़ता। उन सब लोगों को भगवान के पथ पर लाने के लिए देखो तो उन्होंने क्या कौशल किया! उसे एक पुत्र देकर उसका पूरा मन ही भगवान की ओर खींच लिया।"

एक भक्त—महाराज! यह उनकी लीला है, वे ही समझें। हम तो इसे बिल्कुल नहीं समझ पाते।

लाटू महाराज—तुम लोग भला कैसे समझोगे? पहले थोड़ा साधन-भजन करो, बाद में सब समझ सकोगे—किसका किस ओर आकर्षण है और वह कैसे दूर होगा—सब समझ सकोगे।

अब हम लाटू के सेवक जीवन का एक दूसरा पक्ष दिखाएँगे। लाटू को ठाकुर जिस प्रकार भक्तों के घर साथ ले जाते थे वैसे ही अन्यत्र (तीर्थ या मन्दिर दर्शन को) भी वे उसे साथ ले जाते थे। एक दिन (उस दिन रथ की वापसी यात्रा थी) गिरीन्द्र बाबू के दक्षिणेश्वर आने पर ठाकुर ने उनसे कहा—"देखो जी! आज माहेश की रथयात्रा देखने की इच्छा हो रही है। एक नाव भाड़े पर ठीक कर लो। ठाकुर के आदेशानुसार गिरीन्द्र ने एक नाव तय किया। ठाकुर लाटू को साथ लेकर नाव में बैठे। पहले द्वादश गोपाल का दर्शन करने के पश्चात् उन लोगों ने माहेश का जगन्नाथ देखा। अपराह्न में उन लोगों ने नाव में जाकर चाणक की श्री अन्नपूर्णा देवी का दर्शन किया और सन्ध्या के पूर्व ही पानीहाटी होते हुए गदाधर के पाटभवन में चले आये।

लाटू ने ठाकुर से माहेश के जगन्नाथ, द्वादश गोपाल और पाटभवन का इतिवृत्त सुन लिया था। विस्तार के भय से हम उसे यहाँ उद्धृत नहीं कर रहे हैं। जिस दिन हमारे समक्ष यह प्रसंग उठा था, उस दिन उन्होने तीर्थयात्रा एवं तीर्थकृत्य के बारे में निम्नलिखित बातें कही थीं—"तीर्थस्थान में तीर्थ-माहात्म्य सुनना चाहिए। तीर्थ-माहात्म्य सुनते-सुनते उद्दीपना होती है, तब मन तीर्थ-देवता की ओर आकृष्ट होता है। तीर्थ में जाकर तीर्थ-कृत्य करना चाहिए। तीर्थवास करने से साधुसंग का फल मिलता है। तीर्थ तपस्या का स्थान है, वहाँ साधन-भजन करने से थोड़े में ही सिद्ध हुआ जा सकता है।"

अब विद्यासागर महाशय के प्रसंग पर आते हैं। ५ अगस्त १८८२ ई० को ठाकुर भवनाथ, हाजरा और श्री म को साथ लेकर विद्यासागर महाशय के घर गये। दक्षिणेश्वर लौटकर उन्होंने विद्यासागर महाशय के कार्य की बड़ी प्रशंसा की थी। उन्होने कहा कि ऐसे व्यक्ति के दर्शन-स्पर्शन से भी पुण्य होता है। ठाकुर के मुख से ऐसी बातें सुनकर लाटू विद्यासागर महाशय को देखने के लिए उत्सुक हो उठा। हमने सुना है कि लाटू विद्यासागर महाशय को देखने के लिए सन्ध्या के समय प्रायः ही मेट्रोपॉलिटन कालेज के सामने खड़े रहते थे। इस प्रकार उन्हें अनेक दिन खड़े रहना पड़ा था। आखीरकार एक दिन उन्होंने लम्बी शिखायुक्त मुण्डितमस्तक विद्यासागर महाशय को पथ से होकर जाते देखा। देखकर उन्हें नमस्कार किया परन्तु कोई बात नहीं की। अब इन बातों का हम उन्हीं की भाषा में वर्णन करेंगे। वे भिन्न-भिन्न भक्तों के सामने भिन्न-भिन्न प्रकार से विद्यासागर महाशय की प्रशंसा किया करते थे। अपने संग्रह से हम उन्हें यहीं लिपिबद्ध करते हैं।

"विद्यासागर महाशय को देखने के बाद उन्होंने (ठाकुर ने) कहा था—'इतने दिनों बाद आकर सागर से मिला हूँ।' विद्यासागर महाशय ने इस पर क्या कहा जानते हो?—'तो थोड़ा खारा पानी लेते जाइये।' इस पर उन्होंने उत्तर दिया था—'अजी तुम खारे पानी के सागर नहीं, अमृत के सागर हो।' मैं तो उन्हें देखने के लिए रास्ते के किनारे बैठा रहता था। ऐसे कितने ही दिन बीत गये। अन्त में एक दिन उनका (विद्यासागर महाशय का) दर्शन मिला। जानते हो! उनके समान लोगों को देखने से भी पुण्य होता है। उनके जैसे दाता तो आजकल देखने में नहीं आते। कलिकाल में दान ही धर्म है, उन्होंने उसी धर्म का पालन किया है, बस! इसी से उनका सारा बखेड़ा मिट गया है।....जीवनकाल में लोग उन्हें (विद्यासागर को) समझ नहीं सके, इसीलिए बहुत से लोग उन्हें नास्तिक कहते थे। परन्तु वे तो नास्तिक न थे। वे कहा करते थे—'विद्यासागर विराट् की उपासना करते हैं।' अनाथों-गरीबों के ऊपर उनकी कितनी दया थी! छिप-छिप कर वे उनकी कितनी सहायता करते थे। इतनी गोपनीयता के साथ करते कि कोई जान भी न पाता। देखो! विद्यासागर के समान अहंकारशून्य होना। वे इतने बड़े विद्वान् थे, उनकी इतनी आय थी, उनका इतना मान-सम्मान था, परन्तु वे कैसा सबके साथ मेल-जोल रखते थे, गरीब-दुःखियों की सहायता करते थे! कभी यह नहीं कहते कि इतना रुपया दिया है, इतना उपकार किया है। बल्कि जो कोई उनकी निन्दा करता उससे वे पूछते—'क्या कभी मेरे द्वारा तुम्हारी कोई भलाई हुई है?"

उन्होंने विद्यासागर महाशय के जीवन की एक घटना बतायी थी। उनकी भी यह घटना सुनी हुई थी। "देखो! एक दिन विद्यासागर महाशय एक स्टेशन पर उतरकर एक मोदी की दुकान पर तम्बाकू पी रहे थे (उन दिनों विधवा विवाह के प्रश्न पर समाज में बड़ा विवाद चल रहा था)। उस दिन मोदी की दुकान पर विद्यासागर को तम्बाकू पीते देख, उसी अंचल के एक ब्राह्मण-पण्डित विविध विषय पर बातें करने लगे। ब्राह्मण को ज्ञात न था कि वे ही विद्यासागर हैं। थोड़ी देर बाद विधवा विवाह का प्रसंग भी उठा। वह पण्डित विद्यासागर महाशय के प्रति खूब गाली-गलौज करने लगा। उसने कहा—'विद्यासागर मिल जाय तो मैं उसे

समाप्त कर दूँ ।' विद्यासागर सबकुछ समझकर भी कुछ बोले नहीं; सिर्फ इतना ही कहा—'तुम विद्यासागर को पहचानते हो न ?' देखो तो, कितना गाली-गलौज सह गये, पर कुछ बोले नहीं । तुम लोग ऐसा कर सकोगे ?··· तुम लोग तो एक दमड़ी* दान करते हो तो आसमान सिर पर उठा लेते हो । परन्तु वे क्या करते थे ? किसी को मालूम तक नहीं होने देते थे ।··· अरे वे तो देवता (देवप्रकृति मानव) थे । ठाकुर कहते थे—'अगले जन्म में वे और भी शक्ति के साथ जन्म लेंगे ।'···तुम लोग विधवाओं का दुःख भला क्या समझो ? विद्यासागर महाशय समझते थे, इसीलिए तो उन्होंने उनके लिए इतना सब किया । बहुत हुआ तो तुम लोग थोड़ा आँसू बहा देते हो, परन्तु काम के समय कुछ नहीं करते । लेकिन उन्होंने क्या किया देखो ! समाज के साथ ऐसा संघर्ष किया कि लाट साहब (सरकार) को भी उनकी बात माननी पड़ी ।··· दान तो बहुत से लोग करते हैं, परन्तु उनके सामने परिश्रमपूर्वक उपाय करके कितने लोग दान कर सकते है ? उपार्जित धन का दान कर सकोगे ? तभी तो कहेंगे कि दान करने का दिल है । जो अपने खून-पसीने की कमाई का पैसा दान करता है, वही भाग्यवान् है । (जिनके समक्ष लाटू महाराज ने ये बातें कही थी, वे एक बड़े स्टेट के ट्रस्टी थे) ।···अरे ! विद्यासागर, केशव सेन, विजय गोस्वामी, महेन्द्र सरकार—ये लोग कोई मूर्ख तो थे नहीं, सभी पण्डित थे । ये सभी उनके (ठाकुर के) प्रति खूब श्रद्धा-भक्ति करते थे । कुछ न कुछ समझा था, तभी तो वे उन्हें मानते थे । गुण न होने पर भला क्यों मानेंगे ? एक दिन या बहुत हुआ तो दो दिन मानेंगे । पर उसके बाद भक्ति-विश्वास सब चली जायगी ।···जानते हो ! विद्यासागर महाशय (अपनी) माँ को मानते थे, इसीलिये तो माँ के आशीर्वाद से उनके सारे कार्य पूर्ण हुए । तुम लोग तो गर्भधारिणी माँ को नहीं मानते, अतः तुम लोगों की मनोकामना पूरी नहीं हो सकती । जो माँ को नहीं मानता वह भला साधना भी क्या करेगा ? वह क्या गुरु की आज्ञा का पालन कर सकेगा ? ···· विद्यासागर का उदाहरण देकर उन्होंने महन्त लोगों को कैसी शिक्षा दी ! उन्होंने कहा—'देखो जी ! गृहस्थों के बीच रहकर भी विद्यासागर कैसे त्यागी हो गये ? अपना सारा धन वितरण कर दिया, और तुम लोग संन्यासियों के बीच रहकर भी संचय का लोभ नहीं त्याग सकते ।''

यहीं पर विद्यासागर महाशय का प्रसंग समाप्त होता है।

*पुराने पैसे का आठवाँ भाग ।

●

''············व्याख्यान सुनना या पुस्तकें पढ़ना धर्म नहीं है । धर्म तो एक सतत संघर्ष है । स्वयं अपनी प्रकृति का दमन करते रहना; जब तक उस पर विजय प्राप्त न हो जाय, तब तक निरन्तर लड़ते रहने का नाम धर्म है । यह एक या दो दिन, कुछ वर्षों या जन्मों का प्रश्न नहीं है । इसमें तो सैकड़ों जन्म बीत जायँ, तो भी हमें इसके लिए तैयार रहना चाहिए । सम्भव है, हमें अपनी प्रकृति पर तुरन्त विजय मिल जाय; या सम्भव है, सैकड़ों जन्म तक हमें यह विजय प्राप्त न हो; पर हमें इसके लिए तैयार रहना आवश्यक है । जो शिष्य इस भावना के साथ अग्रसर होता है, उसको सफलता मिलती है ।''

—स्वामी विवेकानन्द

(वि० सा० ३।२५)

तीजी भिक्षा जल की लाना

स्वामी निर्विकल्पानन्द सरस्वती

किसी जमाने की बात है, इस दुनिया में एक हरी-भरी घाटी थी। उसका नाम था ध्यान घाटी। इस घाटी में कुछ लोग रहते थे, जिन्होंने वहाँ एक झील खोद रखी थी, जिसका नाम था सहस्रार। जबतक झील जलमग्न थी; उस घाटी में हरियाली थी। वर्षा के अभाव में उस झील का पानी खत्म हो गया और घाटी सूखने लगी। उस घाटी में रहने वाले लोग बहुत ही गरीब थे। पानी के अभाव में घाटी की भूमि पर कुछ भी पैदा नहीं किया जा सकता था। सुषुम्ना नाम की नदी आकर इस झील से मिलती थी, परंतु वर्षा के अभाव में वह नदी भी सूख गयी थी और उस प्रदेश में अकाल पड़ गया। ध्यान घाटी में सतयुग के विषय में एक जन-श्रुति प्रचलित थी। वहाँ के लोग कहते कि जिस समय सुषुम्ना में खूब जल भरा रहता था, तब सहस्रार भी जल से लबालब भरा रहता। ध्यान घाटी की सुंदरता तो अवर्णनीय थी। कहते हैं, उस समय घाटी में समाधि नामक फूलों की सदा बहार रहती। इन फूलों की मंद सुगंध से संपूर्ण वातावरण उल्लसित रहता।

जब कभी लोग यह कहानी कहते, वे उस सुंदर मनोरम दृश्य की कल्पना करते हुए ठंडी आहें भरते थे। वे जानते थे उन समाधि के फूलों को खिलने के लिए बहुत जल की आवश्यकता होती है। मगर कोई भी नहीं जानता था कि किस उपाय से पर्याप्त जल आएगा। उस घाटी के लोग हमेशा बच्चों को समाधि के फूलों की कहानी सुनाते और प्रत्येक व्यक्ति उस अद्वितीय फूल को पाने की निष्फल कल्पना करता रहता था।

उस ध्यान घाटी में एक गरीब व दीन मगर जिज्ञासु बालक रहता था। वह अक्सर इन कथाओं को सुनता और उस फूल को पाने के लिए लालायित हो उठता था। उसे विश्वास था कि प्रयत्न करने पर घाटी के लोग पुनः उस पुष्प को देख सकते हैं। जब उसकी उत्कंठा चरम सीमा पर पहुँची, तो उसने घाटी के एक सयाने व्यक्ति के सम्मुख अपनी जिज्ञासा प्रकट कर पूछा कि मुझे वह उपाय बताओ जिससे मैं समाधि के फूलों को पुनः घाटी में देख सकूँ और घाटी के लोगों को प्रसन्न कर सकूँ। उस सयाने व्यक्ति ने कहा कि तुम इन्द्र को प्रसन्न करो, वह इसका उपाय बतला सकता है। बालक इंद्र से मिलने ध्यान के मार्ग से इन्द्रपुरी की ओर रवाना हुआ। बहुत दिनों की कष्टकारी यात्रा के पश्चात् वह इन्द्रपुरी पहुँचा। उसने इन्द्र को अपने आने का प्रयोजन बतलाया और उसने प्रार्थना की कि आप कृपाकर मेरी घाटी को हरा-भरा करने का उपाय कीजिए।

इन्द्र ने बालक की बात सुनने के बाद खेद प्रकट करते हुए कहा—"बालक तुम्हारी घाटी साधारण वर्षा के जल से तृप्त नहीं होगी, इसके लिए तुम्हें प्रयाग-संगम में सुषुम्ना नदी से मिलने वाली दो अन्य नदियों के प्रवाह को संतुलित करना होगा। इनमें से एक नदी का नाम है इड़ा और दूसरी नदी का नाम पिंगला है। इड़ा नदी की धारा बहुत शीतल है, इसमें वर्ष भर बर्फ जमी रहती है और पिंगला हमेशा उष्ण रहती है, कई स्थानों पर इसका पानी उबलता रहता है।" इन्द्र ने बतलाया कि ये दोनों नदियाँ सुषुम्ना की तरह सीधे सहस्रार से नहीं मिलतीं। ये दोनों आज्ञा नामक झील से जाकर मिलती हैं, मगर यह झील भी आजकल रीती है। मुझे अत्यन्त खेद है कि तुम्हारी ध्यान घाटी सूख

गयी है और लोग अकाल से पीड़ित हैं तथा समाधि का एक भी फूल नहीं है। यह कहकर इन्द्र चुप हो गये। परन्तु वह बालक फिर भी आशा कर रहा था कि देवराज जरूर उसकी समस्या का समाधान करेंगे।

इन्द्र कुछ सोचकर पुनः बोले—"एक उपाय है, यदि तुम कर सको तो। यह निश्चय करना पवन की मर्जी के ऊपर निभर करता है कि मेरी वर्षा को वे कहाँ ले जाना चाहते हैं। अतः तुम पवन से मिलकर उनसे अपनी बात कहो, ताकि वह इड़ा और पिंगला में प्रवाह को संतुलित कर दें। मैं तुम्हें एक बाँसुरी देता हूँ, उससे प्राणायाम के मधुर स्वर गुंजित होते हैं। कैसे बजाना यह भी बताता हूँ। तुम्हारे द्वारा प्राणायाम राग बजाने पर आकर्षित होकर पवन रुक जायगा। तब तुम उससे इड़ा और पिंगला में समान धारा को प्रवाहित करने की प्रार्थना करो, जिससे सुषुम्ना में जलधारा प्रवाहित होने लगेगी व सहस्रार भी लबालब भर जाएगा। इस प्रकार ध्यान-घाटी पहले की तरह हरी-भरी हो जायगी।" इतना कहकर इन्द्र ने बालक को एक बाँसुरी दी तथा सुमधुर प्राणायाम की धुन बजाने का तरीका बतलाया।

बालक प्रसन्न चित्त हो वापस लौट आया व बाँसुरी की सहायता से प्राणायाम का राग अलापने लगा। पवन ने उस धुन को सुना और वह उस धुन के बस हो स्वर को सुनने हेतु बालक के पास आ गया। बालक ने पवन से कहा—"इड़ा और पिंगला में समान वर्षाकर प्रवाह को संतुलित कर दो।" पवन ने प्रसन्नता पूर्वक बालक की बात सुन ली और जैसे ही सुषुम्ना में जल प्रवाहित होने लगा और मूलाधार से सहस्रार तक सभी झीलें स्वच्छ और निर्मल जल से भर गयीं। घाटी पुनः पहले के समान सुंदर, हरी-भरी प्रफुलिप्त और आनन्दमय बन गयी। ध्यान घाटी समाधि नामक फूलों से आच्छादित हो गयी। फूलों की छटा इतनी सुन्दर थी कि उसे देखने देव-पुरुष स्वयं इस घाटी पर उतर आये। सहस्रार-झील जल मग्न हो गयी और उसमें सहस्र कमल खिल उठे। (योग विद्यालय, मुंगेर के सौजन्य से-)

●

यह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है। जिनके मेरुदण्ड है, उन सभी के भीतर ये तीन प्रकार की भिन्न भिन्न क्रिया-प्रणालियाँ मौजूद हैं। ....केवल योगी में यह सुषुम्ना खुली रहती है। यह सुषुम्नाद्वार खुलने पर उसके भीतर से स्नायविक शक्ति प्रवाह जब ऊपर चढ़ता है, तब चित्त उच्च से उच्चतर भूमि पर उठता जाता है, और अन्त में हम अतीन्द्रिय राज्य में चले जाते हैं। हमारा मन तब अतीन्द्रिय, ज्ञानातीत पूर्ण चैतन्य इत्यादि नामोंवाली अवस्था प्राप्त कर लेता है। तब हम बुद्धि के अतीत प्रदेश में चले जाते हैं; वहाँ तर्क नहीं पहुँच सकता। इस सुषुम्ना को खोलना ही योगी का एकमात्र उद्देश्य है।

—स्वामी विवेकानन्द

(राजयोग, पृ० ६६)

पुस्तक समीक्षा

स्वामी विवेकानन्द का मानवतावाद

(मास्को विश्वविद्यालय में प्रदत्त व्याख्यान)

—स्वामी रंगनाथानन्द
अनुवादक— स्वामी विदेहात्मानन्द
५ डिही एण्टाली रोड, कलकत्ता-७०००१४

पृष्ठ—७७

मूल्य—५.७५

प्रस्तुत पुस्तक रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ एवं मनीषी संन्यासी तथा रामकृष्ण मठ, हैदराबाद के अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज द्वारा १० अक्टूबर, १९७७ ई० को मास्को (सोवियत रूस) के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में 'स्वामी विवेकानन्द का मानवतावाद' विषय पर अंग्रेजी में दिये गये व्याख्यान का हिन्दी रूपान्तर है।

वर्तमान विश्व में मानवतावाद एक प्रमुख चिन्तन धारा है। पाश्चात्य जगत में मध्यकालीन विचारधारा को समाप्त करने में जिन विचारधाराओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी उनमें मानवतावादी चिंतन का प्रमुख स्थान है। इस दर्शन के अनुसार हमारे मूल्यों एवं प्रतिमानों का स्रोत कोई दिव्य शक्ति या सत्ता न होकर स्वयं मनुष्य है। एक पूर्णतम मनुष्य ही मनुष्य का प्रतिमान है। मनुष्य में जो पाशविक है और जो दिव्य है उन दोनों के बीच में कुछ ऐसा है जो पूरी तरह मानवीय है और वही हमारी नैतिकता, कला, सौन्दर्य बोध एवं दूसरे आचार-विचारों का प्रतिमान है। बाद में कई विचार और प्रवृत्तियाँ मानववाद में समाहित हो गयीं।

विगत शताब्दी में कुछ ऐसी विचार धाराएँ आयीं जिनका आधार मानववाद था। इसे नवमानववाद (Neo Humanism) कहते हैं। नास्तिक मार्क्सवादी भी मानववाद में विश्वास करते हैं। उनकी मान्यता है कि वर्गभेद के कारण मनुष्य का सर्वाङ्गीण विकास नहीं हो पाया। वर्ग विहीन समाज में ही मनुष्य के समस्त आंतरिक गुणों का विकास होगा। ये व्यक्तिमानव की अपेक्षा समष्टिमानव के विकास पर जोर देते हैं, किन्तु मनुष्य की दैवी शक्ति पर विश्वास नहीं करते। फिर एम० एन० राय ने जिस नव मानववाद की परिकल्पना की उसमें मनुष्य की क्षुधा, मुक्ति और सत्य के संधान पर जोर दिया गया है जयप्रकाश नारायण ने मार्क्स के मानववाद के प्रति विद्रोह करते हुए कहा—Marxism has no incentive towards goodness. यानी मार्क्सवाद में मनुष्य के शुभत्व की कोई प्रेरणा नहीं है। उन्होंने व्यक्तिमानव को समाजमानव से कम महत्व नहीं दिया। अरविन्द ने मनुष्य की निरन्तर विकसनशीलता मे विश्वास करते हुए भविष्य में उस अतिमानव की कल्पना की है जिसमें उसके दिव्य भावों या शक्तियों का पूर्ण विकास होगा।

इन सब में स्वामी विवेकानन्द के मानवतावाद का अपना विशिष्ट महत्व है। स्वामीजी विश्व में वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने एक ओर मनुष्य को मूलतः दिव्य मानते हुए उसी में सभी शक्तियों का दर्शन किया और दूसरी ओर उसके दुःख दारिद्र्य से द्रवित और करुणार्द्र होकर उसे सभी प्रकार की भूखों—दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक—से मुक्ति प्रदान करने की घोषणा की। इस प्रकार स्वामीजी मनुष्य की समग्रगत शक्तियों के समन्वित विकास के मौलिक उद्गाता थे।

उनसे बढ़कर मानव की अनन्त शक्ति में विश्वास रखने वाला तथा उसकी बहिरन्तर मुक्ति का उद्घोषक दूसरा कोई नहीं हुआ था।

स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज विश्व-इतिहास, संस्कृति, दर्शन और मानव शास्त्र के विशिष्ट ज्ञाता होने के साथ ही सम्पूर्ण विवेकानन्द-वाङ्मय के मननशील अध्येता रहे हैं। स्वभावतः उन्होंने अपने व्याख्यान में स्वामी विवेकानन्द के मानवतावाद को एक समुचित परिप्रेक्ष्य एवं व्यापक आयाम में प्रस्तुत किया है। किसी एक व्याख्यान में स्वामीजी के मानवतावाद विषयक दृष्टिकोण एवं चिन्तन को इतने अधिक स्पष्ट रूप में व्याख्यायित एवं प्रस्तुत करना स्वामी रंगनाथानन्द जी जैसे प्रबुद्ध वक्ता के लिए ही संभव था। अपने व्याख्यान के क्रम में स्वामी रंगनाथानन्द जी ने "विवेकानन्द : एक सर्वभौमिक व्यक्तित्व, विवेकानन्द की सर्वत्र सम्पूर्ण मानवीय विकास में अभिरुचि, विवेकानन्द का मानवतावाद भारत की अध्यात्मविद्या से निःसृत है, विज्ञान व तकनीकी के रूप में पूर्ण मानवीय विकास की शिक्षा, ज्ञान का परिपक्व हो विवेक में परिणाम होने की आवश्यकता विवेकानन्द का मानवतावाद: उसका वैशिष्ट्य" आदि प्रायः १९ विचारोत्तेजक विन्दुओं पर विचार करते हुए विवेकानन्द के मानववाद को समझाने का स्तुत्य प्रयास किया है। एक नास्तिक राष्ट्र के मनीषियों के प्रतिबद्ध चिन्तन के साथ एक आस्तिक संन्यासी के उदात्त मानवतावादी विचारधारा को स्वामी रंगनाथानन्दजी के पूर्व संभवतः किसी ने इतने ग्रहणशील रूप में उपस्थित नहीं किया था। प्रकारान्तर से स्वामी रंगनाथानन्दजी ने साम्यवादी रूस में अध्यात्मवादी भारत के सांस्कृतिक राजदूत के रूप में ही विवेकानन्द के मानवतावाद को प्रस्तुत किया। उनके इस महनीय कार्य के लिए सारा भारत उनका ऋणी होगा। वस्तुतः स्वामीजी के मानवतावाद को समझने में यह पुस्तक बहुत दूर तक सहायक सिद्ध होगी।

स्वामी रंगनाथानन्द जी के इस अंग्रेजी व्याख्यान का रामकृष्ण मठ, नागपुर के स्वामी विदेहात्मानन्द ने बड़े सरल, स्वाभाविक, रोचक और प्रामाणिक रूप में हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। अनुवाद में मौलिकता का गुण सर्वत्र सन्निविष्ट है। इतने सुन्दर अनुवाद के लिए विदेहात्मानन्दजी बधाई के पात्र हैं। इस पुस्तक का पंजाबी भाषा में अनुवाद कुमारी जसवीर कौर आहूजा ने किया है। इसी प्रकार भारत की विभिन्न भाषाओं में भी इसका अनुवाद अपेक्षित है।

पुस्तक की छपाई साफ और सुन्दर है। गेट अप नयनाभिराम है। मूल्य अधिक नहीं है। इस उपयोगी पुस्तक के प्रकाशन के लिए प्रकाशक धन्यवादार्ह हैं। आशा है, हिन्दी भाषी जनता इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत करेगी।

—के० ना० लाभ

●

"तुम धनी होगे, मैं निर्धन; तुम सबल होगे और मैं निर्बल; तुम विद्वान् होगे और मैं अज्ञानी; तुम बहुत आध्यात्मिक होगे और मैं कम। किन्तु उससे क्या? हम लोग वैसे बने रहें; लेकिन चूँकि तुममें शारीरिक तथा बौद्धिक बल अपेक्षाकृत अधिक है, इसलिए तुम्हें मेरी अपेक्षा अधिक विशेषाधिकार कदापि नहीं प्राप्त होना चाहिए और यदि तुम्हारे पास अधिक धन है, तो कोई कारण नहीं कि तुम मुझसे बड़े समझ जाओ, क्योंकि विभिन्न दशाओं के बावजूद वही अभेद यहाँ विद्यमान है।"

— स्वामी विवेकानन्द

(वि० सा० ९/११२)

विवेक शिखा के ग्राहकों से निवेदन

प्रिय मित्रो,

भगवान श्रीरामकृष्ण एवं श्री माँ सारदा देवी के जीवन, आदर्श एवं जीवनदायी संदेशों तथा वेदान्त के उदात्त विचारों को विश्व के कोने-कोने में फैला देने की आवश्यकता का तीव्र अनुभव स्वयं विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी ने ही किया था। पत्र-पत्रिकाएँ इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए कारगर औजार साबित होंगे, इस तथ्य को स्वामीजी ने गहराई से महसूसा था। उन्होंने बार-बार अपने गुरुभाइयों एवं संन्यासी तथा गृही शिष्यों को इस महत् कार्य की ओर उत्प्रेरित भी किया था।

स्वामी ब्रह्मानन्द को न्यूयार्क से २५ सितम्बर, १८९४ को लिखे अपने पत्र में स्वामीजी ने लिखा था, "तुम लोगों को एक मासिक-पत्रिका का सम्पादन करना होगा। उसमें आधी बंगला रहेगी, आधी हिन्दी।" (पत्रावली : पृ० १७८) पत्रिका के बिकने की समस्या पर ध्यान देते हुए उन्होंने आलासिंगा पेरुमल को लिखा था, 'इस तरह की पत्रिकाओं को हमारे शिष्यों द्वारा सहायता मिलेगी··· । भारतीय पत्रों की सहायता भारतवासियों को ही करनी चाहिए। (पत्रा. द्वि. भाग पृ० ४७)। पुन: पेरुमल को ही स्वामीजी ने लिखा, " 'यदि हो सके तो समाचार-पत्र और मासिक-पत्रिका—दोनों ही निकालो। मेरे जो भाई चारों तरफ घूम-फिर रहे हैं वे ग्राहक बनायेंगे मैं भी बहुत ग्राहक बनाऊँगा।" (पत्रा. २ भा. पृ. १८५) पत्रिका के लिए स्वामीजी की भावनाओं को इन्हीं उद्‌गारों से समझा जा सकता है।

स्वामीजी की ऐसी ही प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर "विवेक शिखा" का प्रकाशन शुरू किया गया जो विगत छः वर्षों से निरन्तर लोकप्रिय होती हुई अनवरत रूप से चल रही है। इस बीच कागज एवं मुद्रण की दरों में भयंकर वृद्धि होने के बावजूद अब तक इसकी सहयोग-राशि में कोई वृद्धि नहीं की गयी। फलतः हमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

अतएव, विवेक शिखा के कृपालु ग्राहकों एवं ग्राहिकाओं से अनुरोध है कि—

- आप में से प्रत्येक ग्राहक-ग्राहिका कम-से-कम २-३ नये ग्राहक बनाने अथवा अपने मित्रों एवं संबंधियों को उपहार के रूप में भेजने की कृपा करें तो विवेक शिखा की अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में मदद मिलेगी।
- आप विवेक शिखा के लिए विज्ञापन भी दे या दिलवा सकते हैं।
- विवेक शिखा के लिए आर्थिक अनुदान के रूप में रुपये विवेक शिखा के नाम से मनीआर्डर, चेक या ड्राफ्ट के द्वारा भेज सकते हैं।
- हमारे पास विवेक शिखा के पुराने विशेषांक--स्वामी वीरेश्वरानन्द स्मृति अंक (मूल्य ५/-,) युवाशक्ति विशेषांक, (मूल्य ५/-), रामकृष्ण संघ शताब्दी अंक,(मूल्य ६/-) भी काफी बचे हैं। इन्हें भी खरीद सकते हैं। एक साथ १० या अधिक प्रतियाँ लेने पर ४०% छूट दी जायगी।

जनवरी से वर्ष का प्रारम्भ होता है। ग्राहक वर्ष के किसी भी माह से बन सकते हैं। ग्राहकों को जनवरी से सारे अंक उपलब्ध होंगे।

निवेदक

सम्पादक, **विवेक शिखा**

रामकृष्ण निलयम्, जय प्रकाश नगर, छपरा,– ८४१ ३०१ (बिहार)

Faith, faith, faith in ourselves, faith, faith in God—this is the secret of greatness.

—Swami Vivekananda
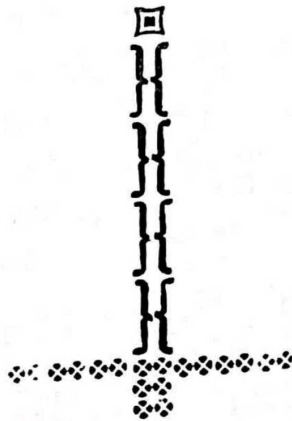
Infinite patience, infinite purity, and infinite perseverance are the secret of success in a good cause.

—Swami Vivekananda

अब पोलीजार मे उपलब्ध

स्फूर्ति

कफ खांसी नाशक

यौवन

दिमागी ताजगी

विकास

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

डाक पंजीयित संख्या—सी० एच० पी०—१४-८३

विवेक वाणी

वेदान्त आदर्श का उपदेश देता है, और आदर्श वास्तविक की अपक्षा। [illegible] होता है। हमलोगों के जीवन में दो प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। एक है अपने आदर्श का सामंजस्य जीवन से करना, और दूसरी है जीवन को आदर्श के अनुरूप उच्च बनाना।.........पहली प्रवृत्ति हमारे जीवन का एक प्रमुख प्रलोभन है। मैं सोचता हूँ कि मैं कोई विशेष प्रकार का कार्य कर सकता हूँ—शायद उसका अधिकांश ही बुरा है और उसके पीछे शायद क्रोध, घृणा अथवा स्वार्थपरता का आवेग ही विद्यमान है। अब मानो किसी व्यक्ति ने मुझे किसी विशेष आदर्श के सम्बन्ध में उपदेश दिया—निश्चय ही उसका पहला उपदेश यही होगा कि स्वार्थपरता तथा आत्मसुख का त्याग करो। मैं सोचता हूँ कि यह करना तो असम्भव है। किन्तु यदि किसी एक ऐसे आदर्श के सम्बन्ध में उपदेश दिया जो मेरी स्वार्थपरता और निम्न भावों का समर्थन करे, तो मैं उसी समय कह उठता हूँ, 'यही है मेरा आदर्श' और मैं उसी आदर्श का समर्थन करने के लिए तत्पर हो जाता हूँ। इसी प्रकार 'शास्त्रीय' बात को लेकर लोग आपस में झगड़ते रहते हैं और कहते हैं कि जो मैं समझता हूँ, वही शास्त्रीय है, तथा जो तुम समझते हो वह अशास्त्रीय है। 'व्यवहार्य' (Practical) शब्द को लेकर भी ऐसा ही अनर्थ होता रहता है। जिस बात को मैं कार्यरूप में परिणत करने योग्य समझता हूँ; जगत् में एकमात्र वही व्यवहार्य है, ऐसी मेरी धारणा होती है। उदाहरणार्थ यदि मैं एक दूकानदार हूँ, तो सोचता हूँ कि संसार में दूकानदारी ही एकमात्र व्यावहारिक कर्म है। यदि मैं चोर हूँ तो चोरी के बारे में भी यही सोचता हूँ।......... इसी कारण मैं तुमलोगों को यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यद्यपि वेदान्त पूर्णरूप से व्यवहार्य है, तथापि साधारण अर्थ में नहीं, वल्कि आदर्श के दृष्टिकोण से. वेदान्त का आदर्श किता ही उच्च क्यों न हो, वह किसी असम्भव आदर्श को हमारे सामने नहीं रखता; और वास्तव में यही आदर्श ठीक-ठीक आदर्श है। एक शब्द में इसका उपदेश है 'तत्त्वमसि'—'तुम्हीं वह ब्रह्म हो' और इसके समुदाय उपदेश की अन्तिम परिणति यही है।

स्वामी विवेकानन्द

(वि० सा० ८/५-६)

आनन्द डाइजेस्ट
पारिवारिक मासिक पत्रिका
के सौजन्य से
श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, मवा टोला, पटना—४ में मुद्रित।